इंदिरा गांधी
राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
समाज कार्य विद्यापीठ

BSW-122
समाज, सामाजिक संस्थाएं और सामाजिक समस्याएँ

खंड

2

सामाजिक व्यवस्था और सामाजिक उपव्यवस्थाएँ

इकाई 1
विवाह और परिवार 93

इकाई 2
समाज और संस्कृतिः भारत में सांस्कृतिक बहुलता 109

इकाई 3
सामाजिक स्तरीकरण 121

इकाई 4
सामाजिक संस्था के रूप में राज्य : इसकी भूमिका और अन्य संस्थाओं पर प्रभाव 137

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

खंड 2 का परिचय

पिछले खंड में आपने समाज से संबंधित मूल अवधारणाओं का अध्ययन किया। इस खंड "सामाजिक व्यवस्था और सामाजिक उपव्यवस्थाएँ" में आप समाज के कुछ महत्वपूर्ण घटकों परिवार, वर्ग, जाति, संस्कृति एवं राज्य से संबंधित जानकारी प्राप्त करेंगे। ये व्यक्ति के व्यक्तित्व को प्रभावित करने में विशेष महत्वपूर्ण हैं। ये व्यक्ति के सामाजिक नियत कर्तव्य तथा उस ढाँचे की, जिसके अन्तर्गत स्त्री या पुरुष अपने निर्णय लेते हैं, और सामाजिक स्थिति से संबंधित अपने विशेषाधिकार तथा कर्तव्यों का मूल्यांकन भी करते हैं। व्यक्तिगत और सामूहिक समस्याओं की जड़ें इन्हीं संस्थाओं की कार्य प्रणाली में निहित हैं।

पहली इकाई "विवाह और परिवार" में सामाजिक संस्था की सबसे अहम इकाई परिवार का वर्णन किया जाएगा। दूसरी इकाई है 'समाज और संस्कृति : भारत में सांस्कृतिक बहुलता जिसमें भारतीय संस्कृति की बहुलता जो सामाजिक ढाँचे और संस्कृति के अन्तर्गत पारस्परिक संबंधित कार्य क्षेत्र का विवरण देता है। तीसरी इकाई "सामाजिक स्तरीकरण" पर है इसमें वर्ग तथा जाति की गत्यात्मकता का वर्णन किया गया है। चतुर्थ इकाई है "सामाजिक संस्था के रूप में राज्य : इसकी भूमिका और दूसरी संस्थाओं पर इसका प्रभाव'। इस इकाई में राज्य का वर्णन किया गया है, राज्य की लोगों के अधिकारों की रक्षा और सुधार कार्य की उन्नति में महत्वपूर्ण भूमिका है। हम अपने इर्द–गिर्द सामाजिक वास्तविकता का अनुभव करें, विशेषकर जब हम अपने कार्यक्षेत्र के पर्यवेक्षण से जुड़े सैद्धान्तिक व व्यावसायिक समाज कार्य का वर्णन कर रहे हों। हममें से कुछ व्यावसायिक सामाजिक कार्य क्षेत्र का अध्ययन जारी रखने के इच्छुक नहीं भी हों सकते हैं। यह खंड तथा यह पाठयक्रम 'सामाजिक कार्य का परिचय' ऐसे शिक्षार्थियों के लिए बहुत उपयोगी है क्योंकि ये सामाजिक व्यक्तियों के विविध व्यावहारिक पक्ष का अध्ययन करते हैं।

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

इकाई 1 विवाह और परिवार

रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 विवाह संस्था

1.3 परिवार संस्था

1.4 परिवार में संबंध

1.5 परिवार की सामान्य विशेषताएँ

1.6 समाजीकरण

1.7 परिवार के स्वरूप में स्थिरता

1.8 विवाह में समायोजन

1.9 परिवार के स्वरूप में परिवर्तन

1.10 परिवार विघटन और तलाक

1.11 एकल अभिभावक परिवार

1.12 परिवार के प्रति कार्यात्मक दृष्टिकोण

1.13 सारांश

1.14 शब्दावली

1.15 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1.16 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको विवाह एवं परिवार जैसी संस्थाओं के बारे में जानकारी प्रदान करना है। इसका उद्देश्य इन संस्थाओं की व्यक्ति एवं समाज के लिए आवश्यकता एवं महत्व की समीक्षा करने में भी आपकी सहायता करना है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- विवाह के विभिन्न स्वरूपों को परिभाषित कर उनकी पहचान कर सकेंगे;
- परिवार संस्था को परिभाषित कर उसकी व्याख्या कर सकेंगे;
- परिवार के विभिन्न प्रकार एवं उनकी विशेषताओं का वर्णन कर सकेंगे;
- समाजीकरण और अन्य कार्यों को स्पष्ट कर सकेंगे;
- अप्रिय पारिवारिक परिस्थितियाँ उत्पन्न करने वाले तथ्यों का वर्णन कर सकेंगे; और
- परिवार अध्ययन के कार्यात्मक दृष्टिकोण के बारे में बता सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

विवाह एक संस्था है जिसमें पुरुष और महिलाएँ पारिवारिक जीवन में प्रवेश करते हैं। इसका उद्देश्य अभिभावक बनना एवं परिवार की स्थापना करना होता है। इस संस्था को

सामाजिक मान्यता तथा धार्मिक स्वीकृति प्राप्त है। हालांकि विभिन्न धर्म विवाह के संबंध में अलग–अलग विचार रखते हैं पर उद्देश्य समान ही रहता है। यह पुरुष और महिला के बीच सामाजिक रूप से मंजूर संस्था है जिसका उद्देश्य प्रजनन एवं परिवार की स्थापना है। विवाह के विचार का एक रोचक एवं परिवर्तनशील इतिहास है।

विश्व में विवाह के अनेक रूप हैं। विश्व में विवाह का सर्वाधिक प्रचलित रूप है एक विवाह और बहुविवाह। बहुविवाह का अर्थ है एक पुरूष या एक महिला का अनेक महिलाओं या अनेक पुरूषों के साथ विवाह करना। जहाँ एक ही समय में एक महिला के अनेक पति हों तो उसे बहुपति प्रथा कहा जाता है। बहुविवाह विवाह का ऐसा रूप है जिसमें कोई पुरूष एक ही समय में दो या अधिक पत्नियाँ रखता है। विभिन्न कालों के समाजों में विद्यमान तात्कालिक परिस्थितियों के कारण बहुविवाह प्रथा प्रचलित रही है तथा स्वीकार की जाती रही है। बहुपति प्रथा वहाँ प्रचलित थी जहाँ सामाजिक जीवन अधिक दुष्कर था और परिवार की सहायता के लिए दो या दो से अधिक पुरूषों का प्रयत्न करना आवश्यक था। यह एक असाधारण चीज ही है जो विलक्षण और चरम परिस्थितियों में ही विद्यमान रहती है। समाज शास्त्रियों ने तिब्बत एवं अफ्रीका के कुछ सुदूर भागों में कुछ वर्गों में ऐसे परिवारों की पहचान की है। बहुविवाह प्रथा तब तक अधिक विकसित नहीं होती जब तक पुरूष समूह कुछ हद तक धन एकत्रित न कर लें अर्थात् इतना धन कि एक पुरूष कई परिवारों की सहायता करने योग्य अतिरिक्त धन एकत्रित न कर लें। इसकी विद्यमानता आंशिक रूप से पुरूष की निम्न लैंगिकता के कारण तथा इस प्रथा से जुड़ी हैसियत पाने की इच्छा के कारण हैं।

फिर भी विवाह की बहुविवाह प्रथा उतनी अधिक प्रचलित नहीं है और न ही इसे व्यापक स्वीकृत मिली है जितनी कि एकल विवाह प्रथा को है। एक विवाह अर्थात एक समय में एक पुरूष का एक महिला के साथ विवाह का आदर्श रूप है और रहा है। एक विवाह प्रथा के लाभ विश्व में पूरी तरह स्वीकृत हैं क्योंकि माना जाता है कि यह स्वरूप विवाह के अन्य किसी स्वरूप की तुलना में अधिक निश्चित एवं दृढ़ पारिवारिक बंधन स्थापित करता है। एकमात्र यह स्वरूप उच्चतम प्यार एवं उदार निष्ठा उत्पन्न करता है तथा बच्चों की उत्पादित एवं श्रेष्ठ देखभाल प्रदान करता है। परिवार संबद्ध रहने की शक्ति एक विवाह प्रथा में अपेक्षाकृत सबसे अधिक है। एक विवाह परिवार अधिक स्थिर एवं चिरकालीन होते हैं।

1.2 विवाह संस्था

विवाह द्वारा प्रजनन से परिवार की स्थापना करने के लिए सामाजिक रूप से स्वीकृत मार्ग है। एक संस्था के रूप में इसमें परस्पर कुछ अधिकार एवं कर्तव्य निहित हैं। विशिष्ट प्रकार के अधिकार एवं कर्त्तव्य विवाह के स्वरूप को एक समाज से दूसरे समाज में भिन्नता प्रदान करते हैं। प्रत्येक समाज में विवाह के सामाजिक महत्व को स्वीकार करने के लिए कुछ स्पष्ट सामाजिक अनुष्ठान निर्धारित किए गए है। इस प्रकार विवाह प्रथा पुरूष और महिला के पारस्परिक सामाजिक संबंधों और सांस्कृतिक व्यवहारों से संबंधित हैं जो प्रजनन के द्वारा परिवार की नींव रखने सहित अन्य उद्देश्यों के साथ निहित उद्देश्य के लिए अपनी संबद्धता सार्वजनिक रूप से सूचित करते हैं। विवाह प्रथा के वास्तविक सामाजिक घटक सभी प्रथाओं की भांति भिन्न समाजों में व्यापक रूप से तथा कुछ अंशों तक हमारे समाज के कुछ उपसमूहों और वर्गों में भी भिन्न–भिन्न प्रकार के हैं। ये परिवर्तन विवाह प्रथा के उद्देश्यों से भिन्नताओं तथा इन उद्देश्यों पर बल देने की मात्रा के कारण होते हैं।

कुछ सार्वभौमिक विशेषताएँ इस प्रकार देखी जा सकती है। पति और पत्नी के बीच लैंगिक क्रियाएँ करना, परिवार के सदस्यों के बीच भरोसा और निष्ठा; एक दूसरे की देखभाल एवं

सहायता करना, प्रत्येक स्थान पर विवाह के संबंध में स्थापित सांस्कृतिक अनुष्ठानों के द्वारा इसके महत्व को दर्शाना एवं मान्यता दी गई है।

विवाह करना

वास्तव में विवाह कानूनी या धार्मिक या दोनों ही प्रकार के विधान करने से आरंभ होता है। विवाह की मान्यता प्रायः विवाह में किए जाने वाले सार्वजनिक आयोजनों के माध्यम से समाजों और व्यक्तियों को सूचना देने से होती है। ऐसे आयोजन समाज के नियंत्रण को अभिव्यक्त करते हैं। ये समारोह दम्पति पर उनके द्वारा ली जाने वाली प्रतिबद्धताओं के महत्व को दर्शाते हुए प्रभाव डालते हैं।

अनुज्ञप्ति और समारोह

प्रायः समाजों द्वारा वांछित विवाह की औपचारिक अनुमति एक अनुज्ञप्ति जारी करके अभिव्यक्त की जाती है। इससे व्यक्तियों के लिए आयु एवं स्वास्थ्य संबंधी विनियमों को पूरा करना आवश्यक हो जाता है। विवाह किन्हीं साक्षियों के सामने होना चाहिए ताकि उपयुक्त प्रमाण एवं पंजीकरण हो सके वैधानिक स्वीकृति एवं सार्वजनिक रूप से स्वीकृत विवाह बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि विवाह के तुरंत बाद संपत्ति का एवं अन्य अधिकार और दायित्व तुरंत प्रभावी हो जाते हैं। इस प्रकार बिना किसी प्रश्न के संविदा के दायित्व स्थायी हो जाते है; और इस संविदा को सरलता से भंग नहीं किया जा सकता। सार्वजनिक स्वीकृति एवं लोक अनुमति उन्हें संबद्ध रखती हैं।

विवाह का अर्थ है कि दो व्यक्ति नए जीवन में प्रवेश कर गए हैं। परस्पर सोने की अंगूठी पहनाना, एक ही पात्र से पेय पीना या एक ग्रास को मिलकर दोनों के द्वारा आधा–आधा खाना ये सब संबद्धता के प्रतीक है। समारोह में सबंधियों एवं मित्रों के द्वारा शुभकामनाएँ व्यक्त की जाती है। चावल फेंकना, तथा खाद्य पदार्थों एवं अन्य उपयोगी वस्तुओं के उपहार उनकी शुभकामनाओं की अभिव्यक्ति है।

धार्मिक अनुष्ठान

विवाह संबंधी अनुष्ठान कई समाजों में धार्मिक अनुष्ठान माने जाते हैं क्योंकि वे विवाह को पवित्र प्रथा मानते हैं। विवाह को भगवान एवं धार्मिक संस्थाओं द्वारा पवित्र बंधन माना जाता है। आज तक अधिकतर समाजों में विवाह–विच्छेद की संभावना के बारे में सोचा भी नहीं जाता। हालांकि कुछ समाज इस संदर्भ में पर्याप्त उदार है लेकिन वे धार्मिक अनुष्ठानों के द्वारा इस संबंध के पवित्र चरित्र को मजबूत बनाने पर जोर देते हैं। जब इन विचारों को स्वीकार कर लिया जाता है तो ये सहायक सामाजिक नियंत्रक के रूप में कार्य करते हैं।

जीवन साथी का चयन करना

विवाह के लिए साथी का चयन दो सामान्य पद्धतियों से किया जाता है अभिभावकों की इच्छा से निश्चित करना या फिर या चयन की स्वतंत्रता के द्वारा। साथियों का चयन स्पष्ट है कि विवाह से पूर्व होता है। निःसंदेह साथी चयन करने का कार्य समारोह पूर्वक विवाह होने से काफी समय पूर्व लोगों के संपर्क में आने से ही आरंभ हो जाता है। विवाह मानव समाज में परिवर्तित होकर अंशतः साथी चयन के नियंत्रण के रूप में कार्य करता है।

समाजों में साथी प्राप्त करने का कार्य अभिभावकों या इसके लिए अधिकार प्राप्त अन्य व्यक्तियों द्वारा तथा वैवाहिक एजेंसियों की सहायता से भी किया जाता है। अनेक समाजों

में व्यावसायिक रूप से जीवन साथी मिलाने वाले (मध्यस्थ) भी विवाह के प्रमुख हिस्सा बन गए हैं। जहाँ निश्चित द्वारा साथी का चयन किया जाता है वहां दो महत्वपूर्ण तथ्य प्रमुख रूप से प्रभावित करते हैं।

प्रथम बंधन में बंधने वाले परिवारों की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति महत्वपूर्ण मामला होता है। प्रायः वे अपनी सुविधा के लिए समान स्थिति वाले परिवारों में विवाह करते हैं जिससे एक समझे जाने वाले साथी के लिए दो परिवार एक बंधन में बंध जाते हैं। फिर बच्चों की इच्छाएँ, और उनके प्यार की भावनाएँ एवं भावी प्रसन्नता की पूरी तरह उपेक्षा भी की जा सकती है। फिर भी विश्वास किया जाता है कि विवाह के बाद प्यार हो जाता है। निश्चय के द्वारा किए गए अनेक विवाह एवं परिवार के तथ्य इस विचार की पुष्टि करते हैं कि विवाह करने वाले जोड़ों के बीच पहले के भावुक प्रेम संबंध सुखी संबंधों की गारंटी नहीं माने जा सकते।

दूसरी प्रणाली में जहाँ साथी चयन की स्वतंत्रता है वहाँ साथी का चयन मुख्यतः संपर्क एवं भावुक प्यार होने के आधार पर व्यक्तिगत रूप से किया जाता है। शारीरिक एवं भावात्मक प्रतिक्रियाओं के आधार पर जल्दबाजी में किए गए निर्णयों से समुचित विचार कर निर्णय की प्रक्रिया समाप्त हो सकती है। इन निर्णयों में विशेषतः वांछित व्यक्ति के छूट जाने के भय से विवाह करने की इच्छा में वृद्धि हो जाती है। विवाह के आधार के रूप में स्वतंत्र चयन एवं भावुक प्रेम के आधार पर ऐसे समाज में एक सामान्य समस्या यह कि इसमें जोखिम होता है कि चयन समुचित विचार कर परिपक्व निर्णय की अपेक्षा अस्थाई भावुक आकर्षण का परिणाम हो सकता है।

साथी के वास्तविक चयन में अनेक तथ्यों की शर्तें लागू होती हैं। मानव समाज में लैंगिकता मुख्य कारक होती है जो लोगों को भावी साथियों के लैंगिक आकर्षण की तरफ आकर्षित करती है। इस संवेग के बिना विवाह संभव नहीं है। यह प्रकृति का इन जातियों को स्थायीत्व प्रदान करने का एक तरीका है। किसी साथी विशेष का चयन सामाजिक परिस्थितियों के ताने बाने से भी नियंत्रित या प्रभावित होता है। समाजों द्वारा निर्धारित कुछ प्रतिबंध हैं जैसे अपनी जाति में चयन करना, निश्चित आयु सीमा में होना, एक जैसे वर्ग में होना, तथा कौटुम्बिक निषेध आदि। आवास की निकटता या समीपता प्रभावित करने वाली अन्य परिस्थित का संकेत करती हैं। एक क्षेत्र में रहने वाले समान विशेषताओं वालों की निकटता समान आदर्शों और उद्देश्यों वाले साथियों के साथ मिलने व उनका चयन करने में सुविधा प्रदान करती है। बड़े शहरों में युवा पुरूषों और महिलाओं में सौद्देश्य स्थापित संपर्क परिचय के अवसर तथा संभावनाओं में वृद्धि करते हैं। प्रायः इसका अर्थ ही ऐसे सार्थक समूहों और संस्थाओं में भाग लेना जो लोगों के मिलने के लिए उपयुक्त वातावरण प्रदान कर सकते हैं।

निकटता, अपनी–अपनी पसंद के प्रति आकर्षण, आदर्श साथी एवं व्यक्तित्त्व की आवश्यकता जैसे तथ्य साथी के चयन में बाधा डालने के रूप में प्रभावित नहीं करते। व्यक्तिगत संबंधों के ताने–बाने जैसे बुने ये सभी पहलू साथी चयन का स्वरूप निर्धारित करते हैं।

1.3 परिवार संस्था

विश्व के अनेक समाजों में परिवार संस्था विवाह का सुपरिणाम है। इसकी परिभाषा लोगों के ऐसे समूह के रूप में दी जाती है जो रक्त, विवाह या गोद लेने के द्वारा परस्पर संबंधी होते हैं जो एक आर्थिक इकाई का निर्माण करते हैं; बच्चों की देखभाल के उत्तरदायी होते हैं और जो प्रायः एक ही गृह आवास में रहते हैं। परिवार को समाज की

आरंभिक इकाई माना जाता है जो वैयक्तिक रूप से तथा समाज के लिए अनेक कार्य करने के लिए जिम्मेदार हैं। यह अपने सदस्यों के समाजीकरण के लिए, उन्हें सांस्कृतिक नियम सिखाने, अपने सदस्यों की मूलभूत आवश्यकता एवं पूरे करने तथा उन्हें अपने भविष्य के लिए और भावी पारिवारिक जीवन के लिए तैयार करने के लिए जिम्मेदार हैं। इसका महत्व इस तथ्य में है कि किसी भी सदस्य का परिवार के बिना कोई अस्तित्व नहीं है और कोई भी समाज अपने सदस्यों को परिवार में शामिल होने के बिना स्थाई नहीं हो सकता। यह क्रमशः सामाजिक संबंधों और सामाजिक नियंत्रण प्राप्त करने के लिए एक महत्वपूर्ण नियंत्रणकर्ता एजेंट के रूप में कार्य कर समाजों को सहायता प्रदान करता है।

1.4 परिवार में संबंध

परिवार प्रजनन कर्ता, उत्पादक, बच्चों को जन्म देने वाला, उनका पालन करने वाला और स्थिति प्रदान करने वाला समूह होता है। इसका कार्य सिद्धांत संबंधों का बंधन है जो परिवार के सदस्यों में सामाजिक संबंधों के ताने–बाने दर्शाता है। यह संबंध कई प्रकार से व्यापक बनाए जा सकते हैं जो परिवारों को विभिन्न समाजों में अपने स्वरूप एवं संरचना में एक दूसरे से भिन्नता प्रदान करते हैं। मूलतः निकटतम परिवार में दो प्रकार के संबंध होते हैं जो प्रायः प्रकट होते हैं ये हैं वैवाहिक संबंध एवं जैविक संबंध। पति पत्नी के बीच का संबंध प्रथम प्रकार का है जबकि निकट परिवार में पाए जाने वाले अन्य अंतर वैयक्तिक संबंध जैविक प्रकार के होते हैं (जैसे पिता–पुत्र, पिता–पुत्री, माँ–बेटा, माँ–बेटी) और अन्य सदस्यों के बीच संबंध जैसे भाई–भाई, बहन–बहन तथा भाई–बहन के होते हैं।

यदि हम विभिन्न समाजों में परिवार संरचना की जाँच करें तो हम देखेंगे कि कुछ स्थानों में वैवाहिक संबंधों पर अधिक जोर दिया जाता है तो कुछ स्थानों में रक्त संबंधों का आधिपत्य रहता है। इस प्रकार हम प्रायः दो प्रकार के परिवार देखते हैं : वैवाहिक परिवार इसमें प्रमुख संबंध पति–पत्नी का होता है और दूसरा है सगोत्र परिवार इसमें प्रमुख संबंध रक्त–संबंध का होता है अर्थात् रक्त संबंधियों के बीच दंपत्तियों की अपेक्षा अधिक बंधन एवं गतिविधियाँ शामिल होती है। वैवाहिक परिवार प्रायः प्रत्येक सदस्य को इस अर्थ में अधिक स्वतंत्रता प्रदान करता है कि यदि वह समूह को अवैवाहिक पाता है तो वह स्वयं को उससे अलग कर सकता/सकती है। सगोत्र परिवार में ऐसा नहीं होता वहाँ प्रत्येक सदस्य जीवन के लिए परस्पर जुड़ा हुआ होता है।

सामान्यतः जीवन काल में व्यक्ति दो प्रकार के परिवारों से संबंधित होता है। जो इस प्रकार हैः

क) उत्पत्ति का परिवार जिसमें व्यक्ति पैदा होता है और उसमें अभिभावक एवं सगे बहन–भाई होते हैं; और

ख) पति–पत्नी और बच्चों वाला प्रजनन परिवार

सामाजिक जीवन के आधार पर वैवाहिक परिवारों पर जोर देने वाले समाज में उत्पत्ति परिवार के सगे भाई बहनों के संबंध ढीले होने लगते हैं। तथा पति पत्नी के संबंधों को महत्व दिया जाता है। सगोत्र परिवार या कुटुम्ब उत्पत्ति परिवार में ज्ञात सहोदर स्वरूप को व्यक्ति द्वारा प्रजनन परिवार स्थापित करने के बाद भी उसे संपूर्ण रूप से दोहराने की अनुमति प्रदान कर देता है। अर्थात् सगोत्र परिवार में वयस्क होने के बाद लड़का या लड़की अपना प्रजनन परिवार स्थापित कर लेते हैं।

परिवार समूह प्रथम मानव विद्यालय है और इसकी कमियाँ होने के बावजूद प्रायः यह सर्वोत्तम विद्यालय है। व्यक्ति की अनौपचारिक शिक्षा उसके परिवार में आरंभ होती है जहाँ सर्वाधिक प्रभावशाली शिक्षा होती है जो सर्वत्र प्रकट होती है। बच्चों को स्वास्थ्य, वैयक्तिक एवं लैंगिक स्वच्छता के मूलभूत अध्याय बच्चों को परिवार में ही सर्वोत्तम रूप से सिखाए जा सकते हैं। परिवार संस्था को व्यक्तित्व का पोषक माना जाता है। परिवार में सहोदर बहनों और भाइयों के बीच परस्पर विशेष सामाजिक संबंध होते हैं। वे भी एक–दूसरे के अच्छे शिक्षक हो सकते हैं जो भावात्मक संतुष्टि प्रदान कर सकते हैं और समस्याओं के समय परस्पर सहायता कर सकते हैं।

व्यक्ति परिवार में ही आरंभिक एवं प्रभावी विचार ग्रहण करता है कि विवाह एवं परिवार सामाजिक संस्था के रूप में श्रेष्ठ अर्थ रखते हैं। व्यक्ति यह भी सीखते हैं कि परिवार बनाने की आवश्यकता को कम नहीं समझना चाहिए अपितु यह सामाजिक रूप से आवश्यक एवं पवित्र संस्था है। यह अस्थाई समझौता नहीं है जिसे लापरवाही से लागू किया जा सके अपितु इसमें मानवीय भावनाएँ एवं घनिष्ठ संबंध शामिल हैं जिन्हें जीवन पर्यंत व्यक्तित्व पर प्रभाव डालने वाला माना जाता है।

1.5 परिवार की सामान्य विशेषताएँ

अपने सामान्य कार्यों में कुल मिला कर एक परिवार की निम्नलिखित विशेषताएँ होती हैं :–

1) परिवार का अस्तित्व एक या अनेक पुरूष या एक महिला अथवा अनेक महिलाओं के बीच विवाह बंधन से होता है।

2) उनमें पति के बच्चों तथा समूह के अन्य सदस्यों के बीच रक्त संबंध या वास्तविक/वैधानिक मान्यता का बंधन होना आवश्यक है।

3) एक आवास या आवासीय शृंखला जो सदस्यों द्वारा कम से कम कभी–कभी संयुक्त रूप से अपनाई जाती है के द्वारा परिवार समूहों में अंतर किया जाता है।

4) एक समूह के रूप में परिवार को कुछ विशिष्ट कार्य करने पड़ते हैं। ये विभिन्न समाजों में कुछ हद तक भिन्न भिन्न होते हैं इनमें से जो सामान्यतः सब जगह किए जाते हैं वे निम्नलिखित हैं :–

   क) परिवार के सदस्यों की शारीरिक क्षति एवं रोगों से रक्षा करना तथा परिवार के दोषी एवं रोगी सदस्य की देखभाल करना

   ख) परिवार खाने, नियंत्रण करने, दर्द बताने, बोलने, स्वच्छता, वस्त्र पहनने तथा अपना एवं दूसरों का सम्मान करने का आरंभिक प्रशिक्षण प्रदान करता है।

   ग) बच्चों का सामाजिकीकरण करना और उन्हें समाज का सदस्य बनाना।

   घ) लिंग, आयु तथा अन्य विशिष्ट परिस्थितियों के अनुसार श्रम का विभाजन करना

   ङ) परिवार को कुछ संपत्ति के अधिकार एवं नियंत्रण भी प्राप्त होते हैं। संपत्ति कर नियंत्रण प्रायः वंशानुगत होता है।

   च) अंतिम है किसी परिवार विशेष से संबंधित होने के द्वारा समाज के अन्य सदस्य सर्वप्रथम व्यक्ति का समाज में स्थान पहचानने लगते हैं। उनका परिवार समाज को एक मुख्य स्थिति प्रदान करने वाला एजेंट बन जाता है यद्यपि परिवार के

नाम का सब जगह प्रयोग नहीं किया जाता तो भी जहाँ इसका अस्तित्व होता ही यह परिवार की स्थिति का प्रतीक बन जाता है और व्यक्तियों को उनके दृष्टिकोण से पहचानने में सहायता करता है। भारत में इसका काफी प्रचलन है जहाँ प्रायः व्यक्तियों की पहचान उनके घरानों के नाम के आधार पर की जाती है सामाजिक देखभाल का एक अन्य महत्वपूर्ण कार्य अपने सदस्यों को सुरक्षा प्रदान करना है।

परिवार के आयाम

समाज शास्त्रीयों एवं मानव वैज्ञानिकों ने कुछ आयाम निर्धारित किए हैं जिन पर एक परिवार की संरचना निर्भर करती है।

कुटुम्ब के सामान्य ढाँचे में दो प्रकार की परिवार संरचनाएँ प्रचलित हैं : लघु परिवार एक विस्तृत परिवार लघु परिवार में वयस्क अभिभावक और उनके आश्रित बच्चे आते हैं। इस प्रकार के परिवार अनेक समाजों में बहुत आम है। विस्तृत परिवार में लघु परिवार एवं उनके अनेक संबंधी शामिल होते हैं जैसे बड़े अभिभावक (दादा–दादी व नाना–नानी), पोते–पोती व नाति–नातिन, चाचा मामा आदि, मामी चाची, बुआ एवं चचेरे ममेरे बच्चे। भारतीय संदर्भ में ऐसे परिवारों को संयुक्त परिवार कहा जाता है क्योंकि इनमें मूलतः लघु परिवार एवं उनके संबंधी शामिल होते हैं।

विवाह के रूप

अधिकतर समाजों में विवाह का सामान्य रूप एकल विवाह ही एक पुरूष का एक स्त्री से विवाह करना होता है। फिर भी इनके अनेक रूप भी देखे गए हैं। लघु विवाह में एक व्यक्ति अनेक व्यक्तियों से विवाह करता है। जहाँ एक पुरूष कई महिलाओं से विवाह करता ही उसे बहुपत्नी विवाह कहा जाता है और जहाँ एक महिला अनेक पुरूषों से विवाह करती है उसे बहुपति विवाह कहा जाता है। महिलाओं की संख्या कम होने के कारण कई पुरूषों के द्वारा एक पत्नी को अपनाना आवश्यकता बन गई और जहाँ भाइयों द्वारा एक सांझी पत्नी को अपनाया जाता है उसे भ्रातृ बहुपति विवाह कहा जाता है।

विवाह के एक रूप की अपेक्षा दूसरे रूप को प्रेरित करने के कुछ कारण होते हैं। कुछ प्रकार के समाजों में आर्थिक स्थितियाँ मुख्य कारक होती हैं जो बहुपत्नी या बहुपति विवाह को आवश्यक बना देती है। उदाहरण के लिए तिब्बत में पारिवारिक भूमि में परिवार के सभी पुत्रों का समान हिस्सा ही तक है। भूमि उनमें अलग–अलग विभाजित नहीं की जाती क्योंकि यह परिवार की सहायता के लिए काफी नहीं होती। इसलिए सभी भाई भूमि और पत्नी का सांझा प्रयोग करते है।

अधिकार का स्वरूप

विस्तृत परिवार वाले अधिकतर समाजों में अधिकार का पैतृक स्वरूप प्रचलित होता है। पितृ प्रधान परिवारों में पुरूषों को परिवार के अन्य सदस्यों पर आधिपत्य होता है। ऐसे स्वरूप जहाँ अधिकार महिलाओं या पत्नी और माता में निहित होता है वहाँ मातृ प्रधान या मातृ सत्ता होती है। अधिकार का आम स्वरूप पैतृक है। कभी कभी पैतृक समाजों में भी महिलाएँ अनौपचारिक रूप से कई परिवारों में आधिपत्य जमा लेती है लेकिन यह कोई सार्वभौमिक नियम नहीं होता। जैसे जैसे कार्य में महिलाओं की संख्या बढ़ती जा रही है अधिकार के स्वरूप में परिवर्तन देखा जा रहा है। ऐसे परिवर्तनों से परिवार प्रणाली के चरित्र में परिवर्तन हो जाता है और परिवार के पुरूष एवं महिला सदस्यों के बीच शक्ति एवं अधिकारों का विभाजन हो जाता है।

जीवन साथी का चयन करने के नियम

समाज द्वारा विवाह साथी का चयन करने से संबंधित कुछ नियम बनाए जाते हैं। ऐसी प्रणाली जहाँ लोगों द्वारा अपने परिवार या कुल से बाहर विवाह किया जाता है, विजातीय विवाह कहलाता है इसी प्रकार जहाँ अपने समूह में विवाह करने की अनुमति होती है उसे सगोत्र या सजातीय विवाह कहा जाता है।

विजातीय विवाह का सर्वाधिक सामान्य नियम कौटुम्बिक विवाह निषेध है जहाँ निकट जैविक संबंध रखने वाले दो व्यक्तियों के बीच विवाह या लैगिंक संबंधों की अनुमति नहीं होती। जीवन साथी के चयन का नियम विजातीय एवं सजातीय लोगों के नियमों के द्वारा प्रतिबंधित किया जाता है।

कौटुम्बिक विवाह निषेध सार्वभौमिक है। यह नियम दो निकट संबंधियों जैसे अभिभावक एवं बच्चे तथा भाई व बहन के बीच लैगिंक संबंधों को वर्जित करता है। कुछ समाजों में यह नियम प्रथम निकटतम चचेरे–ममेरे बच्चों और रक्त संबंधों पर भी लागू होता है। फिर भी प्राचीन मिश्र के राज परिवार में कौटुम्बिक विवाह निषेध नहीं था। कौटुम्बिक विवाह निषेध के कई कारण है। जैसे कुछ लोगों का विचार है कि मनुष्यों में कुटुम्ब के प्रति एक स्वाभाविक अरूचि होती है जबकि कुछ लोगों का कहना है कि अतीत में लोगों को सगोत्र संतानों में आनुवांशिक खतरों की जानकारी थी फिर भी कुछ लोगों ने बताया कि ऐसे कौटुम्बिक विवाहों से परिवारों में ईर्ष्या एवं संघर्ष की भावना समाप्त होती है।

वैवाहिक आवास का स्वरूप

विवाहित दंपतियों के वैवाहिक आवास का विभिन्न समाजों में भिन्न–भिन्न वर्णन किया गया है। ऐसे समाज जहाँ नव दंपती पति के परिवार के साथ रहते हैं इस स्वरूप को पैतृक आवास कहा जाता है। ऐसे समाजों में जहाँ मातृ आवास का नियम है वहाँ नवदम्पती से वधू के परिवार के साथ रहने की आशा की जाती है।

हाल ही के वर्षों में हम देखते हैं कि अधिकतर दंपति अपना मकान बनाते हैं। इन्हें नव स्व आवास कहा जाता है यह स्वरूप पश्चिम सभ्यताओं में बहुत सामान्य है जो वैयक्तिक स्वतंत्रता को बहुत महत्व देता है और वैयक्तिक उन्नति व्यक्तिवाद को बढ़ावा देता है।

1.6 समाजीकरण

वह प्रक्रिया जिसके द्वारा व्यक्ति दूसरे लोगों के साथ परस्पर संपर्क करके विकास करता है, समाज से संबंधित ऐसे व्यवहार और अनुभव के विशिष्ट स्वरूप को समाजीकरण कहा जाता है। समाज के नियमों में बच्चों को सभ्य बनाने का प्रथम दायित्व परिवार का होता है।

प्रत्येक समाज को प्रत्येक बच्चे के जन्म के साथ जिम्मेदार सदस्य बनने का सामना करना पड़ता है। बच्चे को समाज की अपेक्षाओं को सीखना चाहिए। जिससे कि उसके व्यवहार पर भरोसा किया जा सके। उसको समूह के मानदण्डों को हासिल करना चाहिए। समाज को प्रत्येक सदस्य का समाजीकरण करना चाहिए जिससे कि उसका व्यवहार समूह मानदण्डों के मामले में सार्थक हो जायेगा। समाजीकरण की प्रक्रिया में व्यक्ति समाज की पारस्परिक प्रतिक्रियाओं को सीखता है। समाजीकरण एक प्रक्रिया है जिसकी सहायता से एक जीवित व्यक्ति सामाजिक व्यक्ति के रूप में बदलता है। यह एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा युवा पीढ़ी व्यस्क भूमिकाओं के बारे में सीखती है जिससे वह बाद में निभा

सके। यह व्यक्ति के जीवन में एक सतत प्रक्रिया है एवं यह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक जारी रहती है।

सभी मानव समूहों में परिवार समाजीकरण का महत्वपूर्ण एजेंट है। परिवार में लचीले मानवीय संबंध होते हैं जिसमें परिवार के सभी सदस्य परस्पर प्यार और सद्भाव के साथ अनौपचारिक संपर्क रखते हैं और सामान्य विषयों को निपटाते हैं। यह बच्चे को सामाजिक होने का पहला अध्याय सिखाता है और उसकी मौलिक मनोवृत्ति का स्वरूप, आदर्शों और जीवन शैली बनाने में सहायता करता है। यह सामाजिक दायित्व की भावना पैदा करता है और परस्पर सहयोग एवं सम्मान के महत्व के बारे में शिक्षा प्रदान करता है।

बच्चों में अनुकरण करने की प्रवृत्ति होती हैं और परिवार अनौपचारिक वातावरण प्रदान करता है जिसमें अनुकरण के द्वारा प्रथाएं और परम्पराएं सीखी जा सकती हैं। इस के अनुसार बच्चे का व्यक्तित्व बनता है और सामाजिक पहचान बनती है। समाजीकरण बच्चे में आत्म नियंत्रण की योग्यता विकसित करता है और वह परिवार समुदाय और काफी हद तक समाज के प्रति अपने दायित्व को समझने लगता/लगती है।

परिवार में समाजीकरण

व्यक्ति के समाजीकरण में परिवार की सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका होती है। बच्चा अपने परिवार के सदस्यों, अभिभावकों, सम्बंधियों और मित्रों के व्यवहार से बहुत कुछ सीखता है। वह उनका विचित्र व्यवहार, व्यवहार एवं कृत्रिमता आदि का अनुकरण करता है। वह ऐसे कार्यों से बचने का प्रयास करता है जिनके कारण उसे दण्ड मिले या जिन्हें परिवार में बुरा समझा जाता है। परिवार के वातावरण में ही उसकी अच्छी आदतें बनती हैं और परिवार में ही वह आपराधिक प्रवृत्तियाँ ग्रहण करता है।

समाजीकरण की आवश्यकता

व्यक्ति के विकास के लिए समाजीकरण की आवश्यकता के प्रश्न का सर्वोत्तम उत्तर उस उदाहरण से दिया जा सकता है जिसमें मनुष्य का पालन पोषण कुछ कारणों से समाज से बाहर हुआ है। इस प्रकार के मनुष्यों का वर्णन गेस्सल ने अपनी पुस्तक "वॉल्फ चिल्ड्रन और हयूमैन चिल्ड्रन" में डेविस ने अपने निबंधों में किया है। 1920 में भारत में दो बच्चे भेड़िये की मांद में पाए गए उनमें से एक बच्चे की आयु 8 वर्ष तथा दूसरा उससे 2 वर्ष छोटा था। दूसरा बच्चा कुछ महीनों के बाद मर गया लेकिन पहला बच्चा 6 वर्ष तक जीवित रहा। उसका नाम कमला रखा गया। यह लड़की मानव व्यवहार के रूपों एक व्यवहार से पूरी तरह अनभिज्ञ थी। वह चारों हाथ–पैरों पर चलती थी, वह भेड़िए की तरह गुर्राती थी तथा कुछ बोल नहीं सकती थी। वह मनुष्यों को देख कर घबरा जाती थी जैसे वे कोई विजातीय पशु हों। इस प्रकार सामाजीकरण के अभाव में उसके पास मनुष्यों के कोई गुण नहीं थे बस उसकी शारीरिक संरचना मनुष्यों जैसी थी। उसे बोलना, कपड़े पहनना एवं भोजना खाना सीखाया गया। इस प्रकार कुछ वर्षों के बाद समाजीकरण के प्रभाव से वह कुछ मानवीय व्यवहार करना सीख सकी।

व्यक्ति का स्व विकास समाजीकरण के कारण ही विकसित होता है। व्यक्ति का प्रत्येक सामाजिक संबंध समाजीकरण की इस प्रक्रिया में अपना योगदान देता है। मानव समाजीकरण की समस्या बहुत जटिल है और अभी तक किसी भी समाज में इसे पूरी तरह हल नहीं किया गया है। डेविस के शब्दों में, "समाजीकरण में सुधार मानव स्वभाव एवं मानव समाज के भावी परिवर्तन के लिए एक सबसे बड़ी संभावना प्रदान करता है।"

बोध प्रश्न I

टिप्पणी : क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) इस इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1) विवाह और इसके विभिन्न स्वरूपों को परिभाषित कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2) परिवार क्यों एक महत्वपूर्ण सामाजिक संस्था है?

.....

.....

.....

.....

.....

1.7 परिवार के स्वरूप में स्थिरता

परिवार संस्था बहुत स्थिर है तथा इसने भारतीय समाज को पूरी तरह संघटित बनाया हुआ है। फिर भी अनेक तथ्यों ने परिवार को अस्थिर करने में योगदान किया है। आधुनिकीकरण के तथ्यों ने परिवार संस्था को हिला दिया है तथा इसे अस्थिर बना दिया है। इससे अव्यवस्था, भ्रम और अन्यागमन की अनेक समस्याएँ उत्पन्न हो गई हैं जिससे परिवार संस्था अस्थिर होने लगी है। विवाह परिवार आरंभ करने तथा परस्पर जीवन में भागीदार बनने की अपेक्षा अन्य तथ्यों पर विचार कर किए जाते है। व्यक्ति अपनी सुविधा के लिए विवाह करते है वे यह भूल जाते है कि वैवाहिक जीवन के लिए तैयारी एवं प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। एक सफल वैवाहिक जीवन के लिए अनेक प्रकार के त्याग एवं समायोजन करने की आवश्यकता पड़ती है क्योंकि दो एकदम भिन्न व्यक्ति परस्पर एक दूसरे के जीवन में भागीदार बनते हैं। अच्छे वैवाहिक जीवन में सहायता प्रदान करने वाले अन्य महत्वपूर्ण तथ्य हैं परिवार की पर्याप्त आमदनी, गृह प्रबंधन की अच्छी योग्यता; विवाह को सुरक्षित रखने के लिए जीवन साथियों की उच्च प्रतिबद्धता। इन मूल्यों एवं नैतिकताओं को समझने वाले जीवन साथी ही वैवाहिक जीवन को सफल बनाते हैं।

प्रत्येक जीवन साथी तथा परिवार के अन्य सदस्यों की मनोवृत्ति एक कार्य ऐसा वातावरण बनाते हैं जो परिवार को उचित कार्य करने और उनके उचित संबंधों के लिए एक दम अनुकूल होता है। सुखद वातावरण बनाने की जिम्मेदारी अनिवार्यतः दोनों की होती है। ऐसा वातावरण समायोजनों को पोषित करता है और जब कभी किसी के द्वारा भी वातावरण बिगाड़ा जाता है तो समायोजन करना कठिन हो जाता है। व्यक्तिवाद की अतिरंजित भावना व्यक्ति को अपनी इच्छा एवं मस्ती के अनुसार कार्य करने की तरफ अग्रसर करती है। इससे परिवार के प्रति लापरवाही की प्रवृति पैदा होती है। यह प्रवृति प्रायः अनुत्तरदायी होती है जो परिवार को अस्थिर बनाती है क्योंकि परिवार वैयक्तिक उत्तरदायित्व के दृष्टिकोण से पनपता है।

श्रेष्ठ पारिवारिक जीवन बहुत हद तक पुरूष और महिला दोनों के लिए व्यवहार और दायित्व के एक ही या एक जैसे मानकों पर निर्भर करता है। दोहरे मानक या पुरूष के लिए अलग तथा महिला के लिए अलग मानक वैयक्तिक प्रसन्नता और परिवार में सामाजिक मूल्यों को समाप्त कर देते हैं।

1.8 विवाह में समायोजन

विवाह में समायोजन निम्नलिखित क्षेत्रों से संबंधित हैं, लैंगिक संबंध, परिवार की आय का प्रबंध, सामाजिक गतिविधियाँ एवं एक दूसरे के मित्र एवं परिवार। वैवाहिक समायोजन का उन दो अर्थों में अंतर करना महत्वपूर्ण है जो कभी–कभी कमोवेश परस्पर इसके साथ मिश्रित हो जाते हैं। ये हैं वैवाहिक सफलता और वैवाहिक प्रसन्नता। वैवाहिक सफलता का अर्थ है विवाह के एक या अनेक लक्ष्यों की प्राप्ति। वैवाहिक सफलता का निर्णय जीवन साथी के भावात्मक उत्तर से किया जा सकता है। कम से कम यह कल्पना की जा सकती है कि एक साथी बहुत प्रसन्न हो सकता है जबकि दूसरा चरम सीमा तक दुखी हो सकता है। वैवाहिक प्रसन्नता का अर्थ है साथी का या उसके विवाह का व्यक्ति सापेक्ष लहजा।

आज परिवार प्रणाली संक्रमण अवस्था में है। संस्थागत परिवार कुछ समय से उपेक्षित हो रहे हैं तथा एक के बाद एक विवाह एवं स्वच्छंद प्यार का जमाना आ रहा है। परिवार में व्यक्तिवाद की वृद्धि मे सभी को अधिक स्वतंत्रता दी जाती है। निःसंदेह परिवारों में यह प्रवृत्ति सहचरता की दिशा में बढ़ रही है। प्राचीन काल के पैतृक परिवार काफी कठोर होते ही थे। इनमें परिवार में व्यक्तिगत प्रवृत्तियों की अनुमति नहीं होती थी। अनेक दशकों के बाद परिवार प्रणाली में होने वाले परिवर्तनों ने लोकतांत्रिक परिवार बनाने आरंभ कर दिए हैं जो परस्पर विचारों का व आयु का सम्मान करने सबके व्यक्तित्व पर विचार करने और समुचित सहयोग के आधार पर बनते हैं। निरंकुश और अनभिज्ञता प्रधान वाले परिवारों को युक्ति संगत एवं आदान–प्रदान नियम लागू करने वाले परिवारों में बदलने के लिए लोकतांत्रिक संबंधों, लैंगिक संबंधों, अभिभावक व बच्चों के संबंधों तथा सामाजिक जीवन के लिए प्रशिक्षण केन्द्र के रूप में परिवार समूह की समीक्षा करने में शिक्षा की आवश्यकता पड़ती है।

बोगार्डस के अनुसार, "लोकतांत्रिक परिवार वह है जिसमें पति और पत्नी श्रम के पूर्व निर्धारित विभाजन के अनुसार कमोवेश समान अधिकार रखते हों।" यह एक ऐसा समूह होता है जिसका जीवन मूलतः भय और अधिकारों की ताकत पर नहीं अपितु परस्पर सम्मान और प्रेम से प्राप्त ताकत पर निर्भर करता है। परिवार में युक्ति संगत प्यार का नियम चलता है। लोकतांत्रिक परिवार परस्पर आत्म त्याग के सिद्धांत पर चलता है। यदि किसी घर में बच्चा अपने सहयोगी एवं सहचर्य माता व पिता की प्रवृत्ति में आत्म त्याग की भावना नहीं पाता तो वह लोकतांत्रिक परिवार नहीं हो सकता। यह प्रत्येक जाने पहचाने समाज में विशिष्ट एवं दृढ़ कार्यकारी समूह के रूप में विद्यमान रहना चाहिए।

1.9 परिवार के स्वरूप में परिवर्तन

आज परिवारों की संरचना एवं उनके कार्य पहले की तरह नहीं हैं। विकास के तथ्यों ने समाज और परिवार के प्रत्येक क्षेत्र में परिवर्तन किया है क्योंकि कोई संस्था एकाकी नहीं रहती। गैर–घरेलू संस्थाओं में होने वाले परिवर्तनों के परिणाम घरेलू क्षेत्र को भी प्रभावित करते हैं। पिछले कई दशकों में परिवर्तित हुए कुछ तथ्यों के विश्लेषण से हमें परिवार के वर्तमान स्वरूप में होने वाले परिवर्तन को समझने में सहायता मिलेगी।

आर्थिक परिवर्तनों का परिवार पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। प्राचीनकाल आरंभिक मध्यकाल में परिवार या घर आर्थिक केन्द्र थे। श्रम का नया तथा उच्च विशिष्ट प्रकार के

श्रम विभाजन एवं वस्तुओं का प्रचुर उत्पादन होने से आर्थिक क्षेत्र में परिवर्तन हुए जिससे पारिवारिक जीवन पर भी प्रभाव पड़ा। शिक्षा की प्रगति एवं आर्थिक अवसरों की वृद्धि ने महिलाओं को स्वयं आमदनी अर्जित करने के अवसर प्रदान किए। इससे समूह के रूप में परिवार की आर्थिक सम्बद्धता कुछ हद तक खंडित होने लगी क्योंकि परिवार का प्रत्येक सदस्य अपना खर्च स्वयं करने लगा और स्वतंत्र आर्थिक जीवन व्यतीत करने लगा।

इसके अतिरिक्त परिवार के पुरूषों को प्रभावित कर आधुनिक उद्योगों के परिवार एवं घर के लिए गंभीर परिणाम सामने आए हैं। उद्योगों के कारण प्रायः पुरूषों को घर से दूर रहना पड़ता है और वे पीछे अपने परिवार की कोई सहायता नहीं कर सकते। अब पति परिवार में महत्वपूर्ण नहीं रह गया है। अभिभावकों के साथ कार्य करके बच्चे भी परिवार में सहायता प्रदान करते हैं। अब यदि वे भी परिवार का आर्थिक बोझ उठाते हैं तो उन्हें भी घर और उसकी देखभाल छोड़नी पड़ती है तथा घर से दूर अपने काम में लगना पड़ता है। इस प्रकार जिस सीमा तक आर्थिक गतिविधियाँ घर से बाहर होंगी परिवार के स्वरूप परिवर्तन में भी उसी सीमा तक अन्य संस्थाओं की महत्वपूर्ण भूमिका होगी।

अन्य सामाजिक परिवर्तनों का भी परिवार पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। उदार विचारों की उन्नति ने भी परिवार के आदर्शों पर प्रभाव डाला है। वैयक्तिक स्वतंत्रता एवं विचार अभिव्यक्ति ने परिवार पर दूर गामी प्रभाव डाला है। कुछ अन्य तथ्य जैसे परिवार का आकार छोटा होना, तथा छोटे परिवार का प्रचलन बढ़ना, बिलम्बित विवाह, बढ़ती सामाजिक आर्थिक अभिलाषाएँ और संतानोत्पत्ति की अनिच्छा, एकल अभिभावक वाले परिवार आदि भी परिवार के स्वरूप में परिवर्तन लाने के लिए उत्तरदायी हैं।

1.10 परिवार विघटन और तलाक

परिवार विघटन में वृद्धि होने का एक कारण तलाक है। परिवार में विघटन का अर्थ है वैवाहिक पारिवारिक जीवन का अंत प्रायः हालात से उत्पन्न परिवार में समस्याएँ ऐसे विच्छेद से जुड़ी होती हैं। निलिपन जे गूडे कहते हैं कि परिवार में विघटन अनेक कारणों से होता है। उन्होंने 'खाली खोल (हंपटी सेल) शब्दों का प्रयोग किया ही जिसका उन्होंने अर्थ निकाला है कि विवाह अब एक वास्तविक संबंध नहीं है चाहे साथी एक या अनेक कारणों से इकट्ठे रहते हों। समाज में ऐसे खाली खोलों में रहने वाले अनेक लोग हो सकते हैं। कभी–कभी ऐसे विवाहों में तलाक और परित्याग भी होता है। परिवार विघटन का एक अन्य कारण घोर आपदाएँ भी हो सकती हैं जो या तो आंतरिक कारणों जैसे रोग या अपंगता से अथवा बाहरी कारणों जैसे युद्ध या बाढ़ आदि के कारण होता है। ये घटनाएँ परिवारों को इस तरीके से प्रभावित कर सकती हैं कि परिवार के सदस्य बिखर जाते हैं या भावात्मक और मानसिक विक्षोभ में पड़ जाते हैं।

रॉबर्ट वेयर्स के अनुसार परिवार विघटन के कुछ महत्वपूर्ण कारण इस प्रकार है :

1) बदलते सामाजिक संदर्भ जो तनाव, आत्म त्याग और आत्म निर्णय के प्रति सक्रिय होने और अनुकूलन के लिए अपनी क्षमताओं में वृद्धि, अधिकार और कर्तव्य पर अधिाक जोर देते हैं।

2) वैधानिक बंधन कम करना। तलाक लेने के लिए आवश्यक अवधि को कम करने के लिए कानूनों में संशोधन किया गया है। कुछ कानून तलाक के लिए कई विभिन्न आधार प्रदान करते हैं और यहाँ तक कि गलत तलाकों को भी नहीं रोकते।

3) तलाकशुदा लोगों के लिए समाज में पर्याप्त स्वीकृति होना।

4) संगठित धर्म के आधार पर उदार दृष्टिकोण।

5) महिलाओं की आर्थिक स्वतंत्रता में वृद्धि।

पश्चिम में एक सर्वाधिक स्पष्ट कारण है चयन की अत्यधिक सांस्कृतिक स्वतंत्रता। साथी के चयन का अर्थ है निरंतर चयन करने की स्वतंत्रता तथा एक दूसरे से साथी बदलने की स्वतंत्रता। तलाक के परिणामस्वरूप एकल अभिभावक परिवारों की उत्पत्ति में वृद्धि होने लगी है।

1.11 एकल अभिभावक परिवार

कुटुम्ब परिवार और कुटुम्ब रहित परिवार में अंतर है। एक कुटुम्ब परिवार में जन्म, विवाह या अंगीकार करने से संबंधित लोग शामिल होते हैं और कुटुम्ब रहित परिवार में बिना किसी संबंध के किसी भी लिंग के दो या अधिक व्यक्ति आते हैं। जो अकेले रहते हैं। यद्यपि आज भी कुटुम्ब परिवार रूप ही सबसे अधिक हैं तो भी यह अन्य स्वरूपों में परिवर्तित होने लगा है। इससे संकेत मिलता है कि परिवार संरचना, बच्चा–अभिभावक संबंधों और सामान्यतः घनिष्ठ मधुर संबंधों में होने वाले परिवर्तन पूरे विश्व में प्रत्येक समाज में हो रहे हैं। एकल अभिभावक कुटुम्ब अस्थिर परिवार, परित्याग और विवाह–विच्छेद की ही एक शाखा है जबकि एकल अभिभावक परिवार बच्चों के साथ वाले वे परिवार हैं जिनमें तलाक शुदा पुरूष और महिलाएँ पुनः विवाह नहीं करते और उन महिलाओं के परिवार ही जो अविवाहित हो कर बच्चे रखती हैं। बच्चों वाली तलाक शुदा एवं अविवाहित दोनों प्रकार की महिलाओं की गंभीर समस्या आर्थिक समस्या होती है। अधिकतर तलाकशुदा या एकल अभिभावक अपने परिवार की सहायता के लिए काम करने लगते हैं और उन्हें प्रायः कम आमदनी वाले कार्य मिलते हैं।

एकल अभिभावक कुटुम्ब परिवारों की एकमात्र समस्या धन ही नहीं होता। एकल अभिभावक प्रायः समाज में कलंकित अनुभव करते हैं जिससे विवाह का महत्व बढ़ जाता है। बच्चे की उन्नति के लिए घर में दूसरे साथी के अभाव में अनेक एकल अभिभावक स्वयं को अकेला तथा कार्य के प्रति अक्षम समझने लगते हैं। फिर भी इसका कोई प्रमाण नहीं है कि एकल अभिभावक परिवारों में बढ़ने वाले बच्चों को हानि होती है कई अध्ययनों का निष्कर्ष है कि चाहे एक अभिभावक हो या दोनों इससे बच्चों के पोषण की गुणवत्ता में या उन्हें सामाजिक बनाने में कोई अंतर नहीं पड़ता। बच्चों की लिंगीय पहचान की भावना, उनके स्वास्थ्य उनकी सामाजिक उपलब्धि और विवाह तथा परिवार के प्रति उनके दृष्टिकोण पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। कई लोगों से पता चला है कि एकल अभिभावक वाले घरों की अपेक्षा दोनों अभिभावकों वाले कलह युक्त घरों में अधिक कमियाँ होती है।

बोध प्रश्न II

टिप्पणी : क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।
ख) इस इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1) परिवार के विभिन्न आयामों का विस्तृत वर्णन कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2) तलाक को परिभाषित कीजिए। तलाक के कारणों की व्याख्या कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

1.12 परिवार के प्रति कार्यात्मक दृष्टिकोण

परिवार के अध्ययन के लिए समाजशास्त्रियों ने कई विचारधाराओं का प्रयोग किया है। कार्यात्मक दृष्टिकोण समाज में परिवार के कार्यों पर जोर देती है। परिवार द्वारा सामाजिक प्रणाली को बनाए रखने में किया गया योगदान कार्य शास्त्रियों द्वारा किए जाने वाले विश्लेषणों का मुख्य आधार प्रदान कराता है। माना जाता है कि समाज की कुछ पूर्व अपेक्षाएँ या मूलभूत आवश्यकताएँ होती हैं यदि समाज को जीवित रखना है और प्रभावीरूप से सक्रिय रहना है तो उन आवश्यकताओं को पूरा करना आवश्यक है। उन कार्य अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए परिवार उनमें से एक एजेंसी हैं। फिर परिवार और समाज की उप व्यवस्थाओं के बीच कार्य संबंधों का विश्लेषण किया जाता है। माना जाता है कि यदि समाज को कुशलतापूर्वक कार्य करना है तो सामाजिक प्रणाली के अंगों में कुछ सीमा तक संघटन एवं सांमजस्य होना आवश्यक है। इन कार्यों के अलावा उप व्यवस्थाओं द्वारा बड़े समाज के लिए व्यक्तियों के लिए किए जाने वाले कार्यों का भी विश्लेषण किया जाता है। परिवार के मामले में परिवार द्वारा अपने सदस्यों के लिए किए जाने वाले कार्यों पर विचार किया जाता है।

मरडॉक कहते हैं कि परिवार चार नैसर्गिक कार्य करता है – लैंगिक, प्रजनन, आर्थिक और शैक्षणिक। ये सामाजिक जीवन के लिए बहुत आवश्यक है क्योंकि लैंगिकता और प्रजनन के बिना समाज का कोई सदस्य नहीं होगा, आर्थिक कार्यों के बिना जीवन वैसे ही नहीं रह सकता जैसे व्यवस्था और तैयारी के बिना भोजन और शिक्षा जो समाजीकरण का बड़ा हिस्सा है, के बिना सांस्कृतिक सभ्यता नहीं होगी। संस्कृति के बिना मानव समाज कार्य नहीं करा सकता है। परिवार इन कार्यों को अकेला नहीं कर सकता। वह इन सब कार्यों में महत्वपूर्ण योगदान करता है और कोई अन्य संस्था इस संदर्भ में उसकी दक्षता का मुकाबला नहीं कर सकती। परिवार द्वारा समाज के लिए किए जाने वाले कार्य अपने सदस्यों के लिए किए जाने वाले कार्यों से अलग नहीं हैं। वह एक ही प्रकार से एक ही समय में दोनों के लिए एक ही बार में कार्य करता है।

इस प्रकार कार्यात्मक दृष्टिकोण से परिवार का यह विश्लेषण परिवार की बहु–आयामी उपयोगिता और इस प्रकार इसकी अनिवार्यता को सकल्पना प्रदान करता है। (मरडॉक 1949) परिवार को अनेक प्रकार के कार्य करने वाला माना जाता है। जो समाज के लिए अनिवार्य है। फिर मरडॉक यह नहीं समझते कि ये कार्य समाज की किसी अन्य संस्था द्वारा किए जा सकते हैं। अन्य कार्यशास्त्री जैसे टालकॉट पार्सन्स (1955) और वोगल एवं बैलर (1968) तर्क देते हैं कि मरडॉक का परिवार संबंधी वर्णन इतना अच्छा है कि यह सत्य नहीं हो सकता। पार्सन्स (1955) द्वारा किया गया परिवार का विश्लेषण दो आधारभूत और स्थाई कार्यों में बताता है जो सभी समाजों में सामान्य हैं। ये है बच्चों का समाजीकरण और समाज की वयस्क आबादी का स्थिरीकरण। उसका तर्क है कि परिवार मनुष्य उत्पादक उद्योग है और वह विश्वास करता है कि आरंभिक समाजीकरण के लिए वे आवश्यक हैं तथा वे स्नेह, सुरक्षा और बहुआयामी सहायता प्रदान करते हैं।

परिवार व्यक्तियों को अस्थिर करने वाले दैनिक जीवन के तनावों और दबावों को संतुलित करते हैं। पार्सन्स के विश्लेषण की भी आलोचना की गई है क्योंकि उस पर भी सुव्यवस्थित बच्चे और एक दूसरे की प्रत्येक आवश्यकता का ध्यान रखने वाले सहृदय दम्पत्ति की तस्वीर वाले आदर्श परिवार का आरोप लगाया जाता है। मारडॉक की तरह पार्सन्स भी परिवार के कार्यात्मक विकल्पों को पता लगाने में असफल रहे हैं।

वोगेल और बेल कुछ परिवारों का कार्यात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करते हैं जिसमें कई शास्त्रियों की उस प्रवृत्ति को छोड़ा गया है जो परिवार के केवल सकारात्मक पक्षों पर ही ध्यान केन्द्रित करती हैं। उन्होंने परिवार के कार्यों और दुष्कार्यों की जाँच की है और बताया है कि बच्चों के लिए जो दुष्कार्य ही उन्हें अभिभावकों द्वारा परिवार इकाई के लिए और एक संपूर्ण समाज के लिए कार्य माना जा सकता है। जो उनका कहना है कि बच्चे के लिए उनका मूल्य संपूर्ण परिवार के लिए कार्यों के फलस्वरूप प्राप्त लाभों की तुलना में कम है। परिवार की जाँच करते समय सकारात्मक और नकारात्मक दोनों पक्षों पर विचार करना चाहिए। यह भी ध्यान रखना चाहिए कि किसी एक सदस्य के लिए जो अच्छा हो सकता है वह किसी दूसरे सदस्य को हानि पहुँचा सकता है।

1.13 सारांश

इस इकाई में विवाह और परिवार तथा व्यक्तियों एवं समाजों से संबंधित संदर्भों की चर्चा की गई है। आपने एक संस्था/प्रथा के रूप में विवाह के महत्व, उसके स्वरूपों तथा उसके कार्यों के बारे जानकारी प्राप्त की है। आपने परिवार संस्था उसकी संरचना, उसके स्वरूपों विशेषताओं तथा उसके आयामों के बारे में भी जानकारी प्राप्त की है।

अस्थिरता, स्वीकार्यता, अपने परिवारों में समायोजन, परिवारों का पुनर्निर्माण एकल अभिभावक परिवार, एक विवाह विच्छेद/तलाक के बारे में भी अध्ययन किया है। इस इकाई में आपको समाजशास्त्र के कुछ प्रमुख दृष्टिकोणों का उल्लेख करते हुए परिवार अध्ययन के कार्यात्मक दृष्टिकोण से भी अवगत कराया गया है।

1.14 शब्दावली

विवाह : विवाह एक संस्था/प्रथा है जो पुरुषों और महिलाओं को पारिवारिक जीवन में प्रवेश कराती है।

परिवार : परिवार ऐसे लोगों का समूह है जो विवाह, रक्त, या अंगीकार करने के द्वारा इकट्ठे रहते हैं तथा एक कुटुम्ब का निर्माण करते हैं।

समाजीकरण : वह प्रक्रिया जिसके द्वारा व्यक्ति समूह का सक्रिय सदस्य बनता है और परिवार के माध्यम से समाज के स्वीकृत व्यवहार के नियम सीखता है।

तलाक : तलाक कुछ परिस्थिति में पति और पत्नी के बीच संबंध विच्छेद करने का संस्थागत स्वरूप है।

एकल अभिभावक : एकल अभिभावक परिवार बच्चों वाले वे परिवार जिनमें पुरूष और महिलाएँ तलाकशुदा हैं और पुनर्विवाह नहीं करते। अविवाहित माँ बनने वाली महिलाएँ जो बच्चों को उनके पिता के बिना बड़ा बनाती हैं उन्हें भी एकल अभिभावक कहा जाता है।

कार्यात्मक विश्लेषण : विभिन्न संस्थाओं के कार्यात्मक विश्लेषण उन कार्यों का अध्ययन करते हैं जो वे समाज एवं अपने सदस्यों के लिए करती है।

1.15 कुछ उपयोगी पुस्तकें

हरलम्बोस, माइकेल (1980), सोशलोजिकल पर्सपेक्टिव्स, एडिसन प्रेस, लंदन।

शुल्ज, ए डेविड (1976), द चेंजिंग फैमिली, प्रिंटिसहाल इंक, यु.एस.ए.।

स्मेलैसर, जे नील (1993), सोशलॉजी, प्रिंटिस हाल ऑफ इंडिया, नई दिल्ली।

1.16 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न I

1) विवाह पुरूषों और महिलाओं को पारिवारिक जीवन में प्रवेश कराने की एक संस्था है जिसका निहित उद्देश्य अभिभावक बनना तथा परिवार की स्थापना करना है। विश्व में विवाह के अनेक स्वरूप पाए जाते हैं जैसे एकल विवाह और बहु–विवाह। एकल विवाह का अर्थ है एक समय में एक पुरूष का एक महिला से विवाह और बहु विवाह का अर्थ है एक ही समय में एक पुरूष का अनेक महिलाओं से या एक महिला का अनेक पुरूषों से विवाह।

2) परिवार को समाज की आधारभूत इकाई माना जाता है जिसका दायित्व अपने सदस्यों तथा समाज के लिए भी कई प्रकार के कार्य करना है। ये कार्य हैं प्रजनन करना तथा समाज के नए सदस्यों की देखभाल करना, समाज के छोटे सदस्यों को सामाजिक बनाना, लैगिंक भावनाओं के लिए व्यवस्थित अभिव्यक्ति के साधन प्रदान करना तथा आर्थिक कार्य करना।

बोध प्रश्न II

1) समाज शास्त्रियों एवं मानव शास्त्रियों ने कुछ आयाम निर्धारित किए हैं जिन पर परिवार संरचनाएँ आधारित हैं।

परिवार के स्वरूप – लघु परिवार एवं विस्तृत परिवार
विवाह के स्वरूप – एकल विवाह एवं बहु विवाह
अधिकार व्यवस्था – पितृ एवं मातृ अधिकार
वंश परंपरा – पैतृक वंश और मातृक वंश

2) तलाक पति और पत्नी के मध्य संबंधों का अंतिम रूप से संपूर्ण विच्छेद है। इसका वैधानिक अर्थ होता है तथा अदालत को घोषणा करनी पड़ती है कि विवाह भंग हो गया है। तलाक के कुछ महत्वपूर्ण कारण हैं समाज में व्यक्तिवाद की वृद्धि, महिलाओं की आर्थिक स्वतंत्रता, वैधानिक विकल्पों की उपलब्धि तथा समाज में तलाक की स्वीकृति।

इकाई 2 समाज और संस्कृति : भारत में सांस्कृतिक बहुलता

रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 समाज की अवधारणा

2.3 संस्कृति की अवधारणा

2.4 संस्कृति और समाज का संबंध

2.5 संस्कृति, समाज और व्यक्ति का संबंध

2.6 सांस्कृतिक बहुलता

2.7 सारांश

2.8 शब्दावली

2.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

2.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.0 उद्देश्य

मनुष्य ऐसा एकमात्र प्राणी है जो समाज में रहता है और उसकी अपनी संस्कृति होती है। वह एकमात्र प्राणी है जो हँसता और रोता है। वही अकेला प्राणी है जो यह अंतर करता है कि जिस समाज में वह रह रहा है उसमें स्थितियाँ कैसी है और उन्हें कैसा होना चाहिए।

इसे ध्यान में रखते हुए इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :

- समाज और संस्कृति की अवधारणा को समझ सकेंगे;
- समाज, संस्कृति और व्यक्ति के बीच संबंधो को जान सकेंगे; और
- सांस्कृतिक बहुलता की अवधारणा को परिभाषित कर सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

यह माना जाता है कि धरती पर सभ्य मनुष्य का अस्तित्त्व लगभग 15 लाख वर्षों से रहा है। यह वास्तव में एक बड़ा काल प्रतीत होता है। इसी काल से मनुष्य के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन जीने के प्रमाण उपलब्ध हैं। इस प्रकार, समूचे प्राणी जगत में मनुष्य ऐसा पहला जीव था जो संस्कृति के निर्माण में सक्षम था। जब उसने संस्कृति के निर्माण की यह दक्षता प्राप्त कर ली, तो इसका उपयोग करके वह अपने परिवेश के साथ सुरक्षित समायोजन करने के योग्य भी हो गया। फिर उसे अन्य मनुष्यों के साथ रहने की आवश्यकता पैदा हुई और वह इस ओर प्रवृत्त हुआ। उसने न केवल अपने परिवेश को लेकर प्रयोग शुरू कर दिए बल्कि अपने साथी मनुष्यों के साथ अपने अनुभवों को भी बाँटना शुरू कर दिया। कभी वह अपने मौलिक अनुभवों को ही उनके साथ बाँटता, और कभी उनमें कुछ जोड़–जोड़ कर उन्हें रखता। मनुष्यों के समूहों में रहने की इस शुरूआत

ने समाज की अवधारणा को जन्म दिया। तब मनुष्य ने अपने अनुभवों और व्यवहार को संगठित करना शुरू किया, और यहीं से जीवन के एक व्यवस्थित रूप की शुरूआत हुई। यही उसकी संस्कृति बनी। समाज और संस्कृति के उद्‌भव और निर्माण की प्रक्रियाएँ साथ–साथ चलीं। मनुष्य में जैविक विकास की प्रक्रिया के साथ ही सांस्कृतिक विकास और अस्तित्त्व लिए संघर्ष की प्रक्रिया भी चली।

शुरूआती दौर में मनुष्यों ने स्वयं को छोटे–छोटे, साधारण और खानाबदोश समूहों में संगठित किया। यह संगठित समाज की शुरूआत थी, हालांकि यह आज के उन्नत और जटिल समाज से बहुत अलग थी। मनुष्यों को उनकी गतिविधियों से, उनके व्यवहार और साथ–साथ रहने से, और भोजन तथा आश्रय की खोज में समूह बनाकर एक से दूसरे स्थान को जाने से एक समान जीवन शैली बनाने में मदद मिली।

कुछ समाजशास्त्री मानव जीवन के 'सामाजिक' और 'सांस्कृतिक' पहलुओं में अंतर करने की कोशिश करते हैं। वे 'सामाजिक' शब्द का प्रयोग एक ही समाज के भीतर विद्यमान समूहों के आपसी संबंधों के संदर्भ में करते हैं। उनके लिए 'संस्कृति' का अर्थ होता है समाज के सदस्यों की जीवन शैलियाँ। एक समूह के दूसरे समूह के साथ संबंध को संस्कृति का एक पहलू माना जाता है। उदाहरण के लिए, परिवार एक सामाजिक समूह है, और परिवार के लोग जिस तरह से कर्म, संवाद और व्यवहार करते हैं वह उनकी संस्कृति है। समाज को ऐसे व्यक्तियों का समूह माना जाता है जिनका एक समान वास स्थान होता है और जो अपने अस्तित्त्व तथा कल्याण के लिए एक–दूसरे पर निर्भर करते हैं। आज के विशाल समाज वर्गों, जातियों तथा प्रजातीय समूहों आदि से बने हैं।

2.2 समाज की अवधारणा

सुकरात ने कहा था कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और मनुष्य के लिए सामाजिक होना स्वाभाविक भी है और आवश्यक भी। और भी प्राणी हैं जो संगठित जीवन जीते हैं, किंतु मनुष्य का सामाजिक जीवन उनसे भिन्न होता है। अन्य प्राणियों अर्थात पशुओं का पारस्परिक व्यवहार उनकी सहज वृत्ति पर आधारित होता है और उनके साथ ही समाप्त भी हो जाता है, किंतु मनुष्य का व्यवहार सीखा हुआ होता है और एक से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित हो जाता है। यही मनुष्य की विशिष्टता है और जो उसे अन्य प्राणियों से अलग करती है। यही विशिष्टता सभी मनुष्यों को एक सूत्र में बांधती है कि वे एक–सा व्यवहार करें। वे लोगों का एक समूह होते हैं जो एक–सी जीवन शैली अपनाते हैं और उनके व्यवहार तथा अन्य गतिविधियों में भी एक समानता होती है। इसी पहलू से तो हर्स्कोविट्स ने समाज की परिभाषा दी है : "समाज उन व्यक्तियों का एक संगठित, अंतःक्रियाशील समूह है जो एक निश्चित जीवन शैली का अनुसरण करता है।" दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि समाज लोगों से बनता है। मनुष्य अपना अध्ययन लोगों के इसी समूह के सदस्य के रूप में करता है जिसे हम समाज कहते हैं।

कॉम्टे ने समाज को 'सामाजिक स्थैतिकी' और 'सामाजिक गतिकी' के संदर्भ में परिभाषित किया है, जहाँ वह सामाजिक स्थिरता और सामाजिक बदलावों की भी बात करता है। 'सामाजिक स्थैतिकी' का संबंध सामाजिक जीवन के अपेक्षाकृत स्थिर तथा व्यवस्थित पक्षों से है, जैसे पारिवारिक जीवन, विवाह, नातेदारी और सामाजिक संस्थाएँ। इसी प्रकार 'सामाजिक गतिकी' में सामाजिक जीवन के बदलते पक्षों पर ध्यान रहता है, जैसे सामाजिक बदलाव और सामाजिक प्रक्रियाएँ आदि। सामाजिक गतिकी और समाज में होने वाले परिवर्तनों के पक्ष में काँत ने इस बात पर जोर दिया कि समाज का विकास तीन चरणों में हुआ है – जंगलीपन, बर्बरता और सभ्यता। विवाह और परिवार का विकास तो यौन उच्छृंखलता, समूह–विवाह, और बहु–विवाह से होता हुआ अब एक विवाह पर आकर

टिका है। उसी प्रकार, धर्म का विकास सर्कत्मवाद, बहुदेववाद और एक देववाद के चरणों में हुआ है।

यहाँ यह सवाल उठ सकता है कि मनुष्य के लिए समाज में रहना क्यों आवश्यक है अथवा समाज ही मनुष्य के लिए क्यों आवश्यक है। इन सवालों का उत्तर संक्षेप में इस प्रकार दिया जा सकता है :

1) मनुष्य की अपनी आवश्यकताएं होती हैं और वह इन आवश्यकताओं को अपने आप पूरा करना चाहता है। इन्हें वह तभी पूरा कर सकता है जब वह समाज का सदस्य हो या जब वह समाज में रह रहा हो। इन आवश्यकताओं की पूर्ति उन अपेक्षाओं (जरूरतों) और व्यवहार के प्रारूप से तय होती है जिसे हम संस्कृति कह सकते हैं। अलग–अलग समाजों में आवश्यकताओं की पूर्ति के तरीके में व्यापक अंतर होता है। यही अंतर एक समाज को अन्य समाजों से अलग और अनूठा बनाता है।

2) मनुष्य को प्रारंभ से, अर्थात अपने जन्म से ही दूसरों के सहारे की जरूरत होती है। पहले वह दूसरों पर आश्रित होता है जो सामाजिक और शारीरिक पालन–पोषण में उसकी सहायता करते हैं। उसकी समूची बढ़त और विकास का काम संगठित सामाजिक जीवन के दायरे में उसी जीवन के माध्यम से होता है। यहीं से समाज की बुनियादी प्रासंगिकता तय होती है। हालांकि समाज इस भूमिका को मनुष्य के जीवन भर निभाता है, फिर भी मनुष्य को अपनी प्रारंभिक अवस्था में इसकी सबसे अधिक आवश्यकता होती है।

3) समाज मनुष्य को उसके वातावरण और परिवेश की समझ और जानकारी देता है और उसे उससे परिचित कराता है। समाज में ही मनुष्य व्यवहार करना, कर्म करना, प्रतिक्रिया करना और अपने परिवेश और उस समाज के प्रति अपनी भूमिका निभाना सीखता है जिसका वह सदस्य होता है।

ये सभी तत्त्व अलग–अलग या अकेले काम नहीं करते। इनका प्रभाव सम्मिलित होता है। फिर भी, इनमें से प्रत्येक का अपना अलग महत्व होता है और वह अपनी अलग भूमिका भी निभाता है। इसके अतिरिक्त, सामाजिक संगठन और विचारधारा के कुछ बुनियादी तत्त्व होते हैं। ये तत्त्व समाज के ठीक प्रकार से कार्य करने की दिशा में और निरंतरता तथा परिवर्तन में अपना योगदान करते हैं।

बोध प्रश्न 1

टिप्पणी : क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।
ख) इस इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1) समाज से आप क्या समझते हैं?

.....

.....

.....

.....

2) समाज मनुष्य के लिए आवश्यक क्यों है?

.....

.....

.....

.....

2.3 संस्कृति की अवधारणा

प्रारंभ में हम यह कह सकते हैं कि मनुष्य ही ऐसा अकेला जीव है जो संस्कृति के निर्माण और एक से दूसरी पीढ़ी को इसके हस्तांतरण में सक्षम है। कुछ अन्य प्राणियों और कीड़ों के विषय में भी यह माना जाता है कि उनकी भी संस्कृति होती है, किंतु यह उनके साथ ही नष्ट हो जाती है। वहीं, मनुष्य की बनाई संस्कृति उसे अन्य प्राणियों से अलग पहचान देती है।

संस्कृति की अनेक परिभाषाएँ हैं–

संस्कृति की एक सर्वश्रेष्ठ, सर्वाधिक मान्य और प्रारंभिक परिभाषा ई. बी. टेइलर (1871) ने अपनी पुस्तक 'प्रिमिटिव कल्चर' (आदिम संस्कृति) में दी थी। टेइलर के अनुसार संस्कृति "वह जटिल समग्र रूप है जिसमें ज्ञान, विश्वास, कला, नैतिकता संबंधी नियम, विधान, प्रथा, और अन्य कोई भी क्षमताएँ तथा आदतें आ जाती हैं जिन्हें मनुष्य समाज के सदस्य के नाते अर्जित करता है।"

इस परिभाषा से यह संकेत मिलता है कि संस्कृति सरल नहीं होती और एक या दो तत्त्वों से इसका निर्माण नहीं होता। इसके विपरीत, यह जटिल होती है और इसका निर्माण जीवन के अनेक पहलुओं से होता है। उपर्युक्त परिभाषा के अनुसार, ज्ञान से लेकर विधान और प्रथाओं तक इन पहलुओं की एक लंबी सूची है। इनमें आदतें भी शामिल हैं जिन्हें मनुष्य समाज में रहकर उसके अन्य सदस्यों के साथ परस्पर व्यवहार (संवाद) करते हुए अर्जित करता है। हालांकि संस्कृति ऐसी अनेक इकाइयों से मिल कर बनती है जिन्हें विशेषक (विशिष्ट लक्षण) कहा जाता है, फिर भी उसे समग्रता में ही समझना चाहिए। सभी विशेषक आपस में ऐसे गुंथे होते हैं कि वे एक–दूसरे में लगभग विलीन ही हो जाते हैं। जब संस्कृति को समग्र रूप में देखा जाता है तो उसे एक जटिल समग्रता के रूप में ही समझना होता है। इसलिए, संस्कृति की विशेषताओं को परिभाषित और रेखांकित करते हुए, उनमें से कुछ का उल्लेख करना यहाँ समीचीन होगा :

1) **संस्कृति एक जटिल समग्रता है** – संस्कृति के सभी तत्त्वों और विशेषताओं को एक–दूसरे के परिप्रेक्ष्य में समझना चाहिए। इस संदर्भ में, वे सभी एक समग्र रूप का निर्माण करते हैं जिसे संस्कृति कहते हैं। यह संस्कृति जटिल प्रकृति की होती है।

2) **संस्कृति सीखी जाती है** – मनुष्य की संस्कृति उसकी सहज वृत्ति पर आधारित अथवा नैसर्गिक नहीं होती। यह जैविक स्तर पर हस्तांतरित भी नहीं होती। इसका निर्माण तो आदतों से अर्थात् प्रतिक्रिया की उन सीखी हुई प्रवृत्तियों से होता है जिन्हें प्रत्येक व्यक्ति जन्म के बाद अपने ही जीवन के अनुभवों से अर्जित करता है।

3) **संस्कृति–अंतर्निविष्ट होती है** – वैसे तो सभी प्राणियों में सीखने की क्षमता होती है, किंतु यह क्षमता काफी मात्रा में केवल मनुष्य में ही होती है कि वह अपनी अर्जित आदतों और व्यवहार को अपनी संतान को सौंप सकता है। किसी कुत्ते को बहुत–से करतब सिखाए जा सकते हैं, किंतु उन्हें वह अपने पिल्लों को हस्तांतरित नहीं कर सकता। किंतु, मनुष्य अपने सारे ज्ञान और आदतों को अपनी संतान को सौंपने में सक्षम होता है।

4) **संस्कृति सामाजिक होती है** – सांस्कृतिक किस्म की आदतें केवल कालांतर में अंतर्निविष्ट अथवा हस्तांतरित ही नहीं की जातीं, वे सब सामाजिक भी होती हैं, अर्थात समाज में साथ रह रहे सभी मनुष्य उन्हें आपस में एक–दूसरे के साथ बाँटते हैं। समाज के सदस्यों की आदतों की यही आपसी साझेदारी उनकी संस्कृति होती है।

5) **संस्कृति विचारमूलक होती है** – किसी समूह की संस्कृति का निर्माण करने वाली आदतों से ही व्यवहार के आदर्श नियम अथवा प्रतिमान बनते हैं।

6) **संस्कृति संतोषप्रद होती है** – संस्कृति सदैव और आवश्यक रूप में, जैविक आवश्यकताओं को और उससे निकली आनुषंगिक आवश्यकताओं को संतोषप्रद रूप में पूरा करती है। यह प्रकृति के बाह्य जगत और साथी मनुष्यों के साथ व्यक्ति के पारस्परिक व्यवहार अथवा संवाद को भी संतोषजनक ढंग से पूरा करने में सहायक होती है।

7) **संस्कृति अनुकूली होती है** – संस्कृति परिवर्तनशील है। परिवर्तन की प्रक्रिया अनुकूली प्रतीत होती है। इसकी तुलना जैविक जगत में होने वाले उद् विकास से की जा सकती है, किंतु यह अलग किस्म की होती है। कालांतर में संस्कृति भौगोलिक परिवेश के साथ सामंजस्य कर लेती है, और मानव जीवन की जैविक तथा सामाजिक–मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं के साथ भी।

8) **संस्कृति समाकलनात्मक होती है** – अनुकूलन की प्रक्रिया में, संस्कृति के सभी तत्त्व एक स्थिर और समाकलित समग्र रूप का निर्माण करते हैं। कुछ मानव शास्त्री मानते हैं कि संस्कृति वास्तव में एक समाकलित अथवा एकीकृत व्यवस्था होती है जिसके अधिकांश तत्त्व एक–दूसरे के साथ पूर्ण संतुलन बनाए रखते हैं।

9) **संस्कृति भाषा की वाहक होती है** – संस्कृति के सभी तत्त्वों का एक से दूसरी पीढ़ी में हस्तांतरण भाषा के माध्यम से मौखिक अथवा लिखित रूप में होता है। भाषा के बिना मनुष्य संस्कृति को एक काल से दूसरे काल में और एक स्थान से दूसरे स्थान में संप्रेषित नहीं कर सकता।

10) **संस्कृति संचयी होती है** – कोई पीढ़ी किसी ज्ञान, अथवा कौशल अथवा संस्कृति के किसी भी रूप को अपनी पिछली पीढ़ी से प्राप्त करती है। अर्जित संस्कृति में वृद्धि अथवा संशोधन होता है और एक संचित रूप में यह अगली पीढ़ी को हस्तांतरित कर दी जाती है। इससे मनुष्य को ज्ञान, कौशल और अन्य सांस्कृतिक तत्त्वों को सुदूर अतीत से प्राप्त कर उन्हें भावी पीढ़ियों को हस्तांतरित करने में सहायता मिलती है।

संस्कृति की अनेक परिभाषाओं में से कुछ ऐसी हैं जिनमें मानव–व्यवहार और परिवेश की स्पष्ट अभिव्यक्ति हुई है, और इन पर भी विचार होना चाहिए। आइए देखते हैं –

"संस्कृति परिवेश का मानवजनित अंग है।" (हर्स्कोविट्स, एम. जे., 1955)

"किसी समाज विशेष के सदस्यों के परस्पर बाँटे और हस्तांतरित किए गए ज्ञान, अभिवृत्तियों तथा आदतन व्यवहार के प्रतिमानों का कुल योग" संस्कृति है। (लिंटन, 1940)

जीने के लिए ऐतिहासिक रूप में जनित ऐसी सभी अभिरूप डिजाइन चाहे वे व्यक्त हो अथवा अव्यक्त, तर्कशील हों, अतर्कशील, अथवा गैर–तर्कशील, जो किसी भी समय विशेष में मनुष्य के व्यवहार के लिए संभावित मार्ग दर्शकों के रूप में विद्यमान रहते हैं (वे संस्कृति का निर्माण करते हैं)। (क्लुकहोन और केली, 1945)

संस्कृति की अवधारणा में उपकरण, प्रविधियाँ, विचार, मूल्य और समस्त जीवन भी आ जाता है। (क्रोबर, 1948) ऐसे तमाम पहलू, कलाएँ और हस्तकृतियाँ, और अर्जित अथवा हस्तांतरित मानव व्यवहार के प्रतिमान, जो मानव समूहों की उल्लेखनीय उपलब्धियों का रूप लेते हैं, जिनमें हस्तकृतियों में उनका मूर्तरूप भी सम्मिलित है। (क्रोबर और क्लुकहोन, 1952)

इस तरह, यह स्पष्ट हो जाता है कि संस्कृति जैविक परिघटना से भी बढ़कर है। संक्षेप में, संस्कृति की धारणा में मनुष्य का व्यवहार सम्मिलित है जो उसने अपने समूह से स्वेच्छा से सीखा अथवा अनुकूलन की प्रक्रिया से अर्जित किया होता है, और इसमें सम्मिलित होती हैं विभिन्न प्रकार की प्रविधियाँ, सामाजिक तथा अन्य संस्थाएँ, विश्वास और आचरण के प्रतिमानित तरीके। इस प्रकार, मनुष्य "संस्कृति का निर्माण करने वाला" एकमात्र जीव हो जाता है।

जैसा कि हम कह चुके हैं, संस्कृति के दो पक्ष होते हैं –

1) भौतिक संस्कृति, और

2) अभौतिक संस्कृति।

1) **भौतिक संस्कृति** – इसमें वे सभी हस्तकृतियाँ अथवा वस्तुएँ आ जाती हैं जिनका निर्माण मनुष्य अपने उपयोग के लिए स्वयं करता है, जैसे मकान, फर्नीचर, कपड़े, उपकरण आदि। यह संस्कृति का वह पहलू होता है जिसे देखा, हुआ और परखा जा सकता है। भौतिक संस्कृति के तत्त्वों को रचा, बनाया, बिगाड़ा और फिर से बनाया जा सकता है, और मनुष्य की आवश्यकताओं और इच्छाओं के अनुसार स्वेच्छा से उन्हें सुधारा भी जा सकता है। इनमें से कुछ सृजन मनुष्य को उसके परिवेश से बचाने के लिए, अस्तित्त्व की प्रक्रिया में उसकी सहायता के लिए, और खराब मौसम और प्रतिकूल जलवायु से लड़ने के लिए होते हैं। औषधियों जैसे तत्त्वों का अन्वेषण, आविष्कार और उपयोग बीमारियों से लड़ने और स्वास्थ्य तथा जीवन–स्तर सुधारने के लिए किया जाता है। भौतिक संस्कृति के कुछ पक्षों का सृजन और निर्माण अभौतिक संस्कृति में आए बदलावों से उपजने वाली आवश्यकताओं और इच्छाओं की पूर्ति के लिए होता है – ये संस्कृति के विचारमूलक पक्ष होते हैं। अभौतिक संस्कृति की तुलना में भौतिक संस्कृति के बदलाव अधिक व्यापक और विस्तृत होते हैं।

2) **अभौतिक संस्कृति** – इसमें संस्कृति के सभी अभौतिक और आध्यात्मिक पक्ष आ जाते हैं। एलनवुड में संस्कृति को मनुष्य की समूची भौतिक सभ्यता के संदर्भ में परिभाषित किया है, जिसमें उपकरण, हथियार, वस्त्र, आश्रय, मशीनें और उद्योग व्यवस्थाएँ भी आ जाती हैं। वहीं, दूसरी ओर उसने संस्कृति को मनुष्य की अभौतिक अथवा आध्यात्मिक सभ्यता के रूप में परिभाषित किया है, जिसमें भाषा, साहित्य, कला, धर्म, संस्कार, नैतिकता, विधान और सरकार आ जाती है। इस परिभाषा में उस क्षेत्र को रेखांकित किया गया है जो भौतिक और अभौतिक संस्कृति के अंतर्गत आता है।

बोध प्रश्न II

टिप्पणी : क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।
ख) इस इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1) संस्कृति की परिभाषा लिखिए और उसकी विशेषताएँ बताइए।

.....

.....

.....

.....

.....

2.4 संस्कृति और समाज का संबंध

इस संबंध को इस तरह आसानी से समझा जा सकता है कि संस्कृति का संबंध मनुष्य के मन में बसने वाले विचारों, मूल्यों और नियमों से होता है, जबकि समाज का संबंध स्वयं लोगों से होता है। इस तरह, विचारों से तो संस्कृति बनती है, और मनुष्यों से समाज।

हर्स्कोविट्ज इसे स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि "संस्कृति लोगों के जीने की शैली होती है, जबकि समाज उन व्यक्तियों का एक संगठित और अंतःक्रियात्मक समूह होता है जो एक निश्चित जीवन–शैली का अनुसरण करते हैं।" और "समाज लोगों से बनता है; वे जिस तरह व्यवहार करते हैं, वह उनकी संस्कृति होती है।"

प्रारंभ में हम मनुष्य के विचारों, संस्थाओं, और भौतिक वस्तुओं का अध्ययन कर सकते हैं। वास्तव में तो हम स्वयं मनुष्य का अध्ययन करते हैं। इस तरह, मनुष्य के सामाजिक प्राणी वाले रूप को उसके सांस्कृतिक जीव वाले रूप से अलग करना मुश्किल है। ये दोनों पक्ष आपस में ऐसे घुल–मिल गए हैं कि एक के बगैर दूसरे को समझना और समझाना संभव नहीं है। यहाँ हम यह कह सकते हैं कि समाज और संस्कृतिक एक–दूसरे से भिन्न नहीं हैं। हमें समाज और संस्कृति के साथ ही सामाजिक वास्तविकताओं को समझना होगा।

समाज का निर्माण व्यक्तियों से होता है, और समाज के सदस्य व्यक्ति मर जाते हैं तो उनके स्थान पर दूसरे व्यक्ति आ जाते हैं। इस तरह, समाज एक संरचनात्मक पक्ष होता है। इसकी संरचना और निरंतरता दूसरे सदस्यों के जन्म, निधन और प्रतिस्थापन पर निर्भर होती है। दूसरी ओर, संस्कृति तो सदस्य व्यक्तियों पर निर्भर नहीं होती। सदस्य व्यक्तियों के जन्म, निधन और प्रतिस्थापन का संस्कृति पर कोई अधिक प्रभाव नहीं पड़ता। समाज तो सामाजिक संरचना और सामाजिक संगठन के दायरे में आता है, जबकि संस्कृति एक प्राकृतिक व्यवस्था के दायरे में आती है।

सामाजिक स्तर पर अंतःक्रियात्मक व्यवहार की प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है जिसके सामाजिक संबंध के स्थिर स्वरूप का संबंध उससे होता है जिसे हम सामाजिक संरचना कहते हैं; जबकि सांस्कृतिक स्तर पर विश्वास, मूल्य, नियम (मानक) आदि होते हैं जिनके संदर्भ में व्यक्ति अपने संसार को परिभाषित और अपनी भावनाओं तथा निष्कर्षों को व्यक्त करते हैं। इस तरह, संस्कृति वह ताना–बाना होता है जिसमें मनुष्य अपने अनुभव की व्याख्या करते हैं; कर्म जो स्वरूप प्राप्त करता है, वह सामाजिक संरचना होती है। अतः संस्कृति और सामाजिक संरचना एक ही परिघटना के विभिन्न पक्ष हैं।

एस.एफ. नाडेल (1951) ने समाज और संस्कृति में भेद करते हुए कहा हैं – "समाज का अर्थ हैं संबंधों तथा समूहों के आयामों पर निरूपित सामाजिक तथ्यों की समग्रता; कर्म के आयामों में उसी समग्रता को संस्कृति कहते हैं।" इस संदर्भ में कुछ विद्वानों ने यह सवाल भी उठाया है – "क्या लोगों के जीने के ढंग के बजाय लोग–समाज–ही वास्तविकता नहीं हैं?" कुछ लोग जीवन–शैलियों को ही लोगों के व्यवहार से निकले अमूर्त निष्कर्ष मानते हैं। अतः, समाज का अध्ययन हमारे लिए इस कारण महत्वपूर्ण है क्योंकि इससे हमें इस तथ्य को समझने का अवसर मिलता है कि समूहों में रह रहे मनुष्य का जीवन उसके व्यवहार को किस प्रकार प्रभावित करता है।

सभी समाजों में व्यक्तियों के आपसी संबंध आयु, शक्ति, दायित्वों और हैसियत के अनुसार बदल जाते हैं। सभी समाजों में, व्यक्ति का सामाजिक जीवन किसी समूह के साथ उसकी पहचान से शुरू होता है। उस समूह का सांस्कृतिक प्रशिक्षण ही व्यक्ति को समूह अथवा समाज की अपेक्षाओं के अनुसार जीने योग्य बनाता है। इस सीखने के अनुभव से ही व्यक्ति अपनी संस्कृति में क्षमता अर्जित करता है।

मनुष्यों के लिए समाज की आवश्यकता क्यों है? इसे अनेक विद्वानों ने समझाया है। इसे अंशतः मनुष्य के शारीरिक और मानसिक गठन के संदर्भ में और अंशतः उसके सांस्कृतिक अनुकूलन के संदर्भ में समझाया गया है।

मनुष्य को समाज में क्यों रहना चाहिए? इसे निम्न लिखित कुछ कारणों से समझा जा सकता है –

सबसे पहले तो मनुष्य को समाज में अपनी जैविक और अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति करनी होती है। किंतु वह उन्हें पूरा करने के लिए सांस्कृतिक साधनों को अपनाता है और इस प्रकार संस्कृति एक साधन बन जाता है उद्देश्य पूर्ति का। समाज के सदस्य के रूप में, मनुष्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अपने विकल्पों को व्यक्त कर सकता है, और पूर्ति की यह प्रक्रिया सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों का रूप ले लेती है। आश्रय और वस्त्रादि संबंधी अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मनुष्य अपनी सांस्कृतिक क्षमताओं का उपयोग करता है।

यह सच है कि जन्म के समय शिशु शारीरिक और मानसिक दृष्टि से अत्यंत कमज़ोर होता है और अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अपने परिवेश का सामना भी नहीं कर सकता। उसे परिपक्व और आत्म निर्भर होने में बहुत समय लगता है। अपने पालन–पोषण के दौरान उसे दूसरों के लगातार सहारे की जरूरत होती है। उसकी बढ़त और विकास की यह पूरी प्रक्रिया समाज के अन्य सदस्यों या उसकी समूह के सदस्यों की देखरेख में चलती है। यह समूह के संगठित जीवन में संपन्न होती है। इसी प्रक्रिया के दौरान बच्चा मूल्यों और मानकों को ग्रहण कर अपने व्यक्तित्त्व का विकास करता है। वह कौशल और क्षमताओं का विकास करता और अपने आसपास की दुनिया का सामना करने के लिए स्वयं को तैयार करता है।

उपर्युक्त कारणों से ही, स्वयं को आत्म–निर्भर बनाने और स्वयं के प्रति दूसरों की अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए व्यक्ति का समाज में रहना अनिवार्य है। और, समाज के सदस्य के रूप में उसका अन्य सदस्यों के साथ निरंतर संवाद और अंतःक्रिया की स्थिति में भी रहना अनिवार्य है।

2.5 संस्कृति, समाज और व्यक्ति का संबंध

जीवन के सामाजिक और सांस्कृतिक पहलू एक–दूसरे से सम्बद्ध होते हैं। इसके सदस्यों का व्यवहार तो सामाजिक सम्बधों का मामला होता है। इस संबंध की सदस्यता उन व्यक्तियों में होती है जो एक समाज के एकक होते हैं। एक सामाजिक संबंध बनाने के लिए कम से कम दो व्यक्तियों की जरूरत होती है। समाज में व्यक्तियों का महत्व उसकी संस्कृति की प्रोन्नति में निहित होता है। संस्कृति, समाज और व्यक्ति, ये तीनों ही पक्ष उस तंत्र से सम्बद्ध होते हैं जिसे सामाजिक ताना–बाना कहा जाता है। व्यक्ति अपने परिवेश के साथ भी संवाद रखते, विचारों को रूप देते, और अपनी भौतिक तथा अभौतिक संस्कृति का निर्माण भी करते हैं। पर्याप्त और सकारात्मक संबंध बनाने के लिए यह अनिवार्य होता है कि व्यक्ति दूसरे व्यक्तियों के साथ समायोजन करें।

सामाजिक तथा सांस्कृतिक तत्त्वों और व्यक्तियों के बीच जो रचनात्मक संवाद और क्रिया होती है उससे समाज एक रहने योग्य सभ्य स्थान बन जाता है। ये सभी तत्त्व मिल–जुल कर कार्य करते हैं और एक–दूसरे को शक्ति प्रदान करते रहते हैं। इनमें से एक की भी अनुपस्थिति में दूसरों का अस्तित्त्व संभव नहीं होगा। व्यक्तियों के आपसी संबंधों में ही उनका व्यवहार उनके साथियों से प्रभावित होता है। व्यक्ति का समस्त व्यवहार उसके समूह, उसके समाज में ही चलता है।

एक अकेले व्यक्ति के व्यवहार को उसका व्यक्तित्त्व कहा जा सकता है। उसी तरह, व्यक्तियों के समूह का व्यवहार भी उसकी संस्कृति कहलाता है। संस्कृति को व्यक्तियों का समग्र व्यवहार भी कहा जा सकता है।

समाज में व्यक्ति उस प्रकार के आचरण अथवा व्यवहार सीखते हैं जो उसके समूह को स्वीकार्य होता है। स्वीकार्य व्यवहार को सीखने की यह प्रक्रिया संस्कृतिकरण कहलाती है। इस तरह, यह प्रक्रिया विद्यमान संस्कृति और व्यक्तियों के व्यवहार में प्रस्तुत संस्कृति के बीच एक सेतु का काम करती है। संस्कृतिकरण की इसी प्रक्रिया के दौरान व्यक्ति अपने समाज की इच्छानुसार 'मनुष्य' के रूप में ढाले जाते हैं।

व्यक्ति का जीवन छोटा होता है और वह अपने समाज और संस्कृति में कुछ वर्ष बिताने के बाद मर जाता है। दूसरी ओर, संस्कृति एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक चलती रहती है। संस्कृति उस किसी भी व्यक्ति से बड़ी होती है जो उसमें रहता है। उसी तरह, किसी भी समाज में वही वही लोग लंबे समय तक नहीं बने रहते। लोग पैदा होते और मरते रहते हैं और समाज के सदस्य लगातार बदलते रहते हैं। जब समाज में व्यक्तियों की एक पूरी पीढ़ी गुजर जाती है तो व्यवहार का प्रतिमान (संस्कृति) ही नए सदस्यों (व्यक्तियों) को अतीत से जोड़ता है। व्यवहार का यह प्रतिमान समाज के उन व्यक्तियों को हस्तांतरित हो जाता है जो वर्तमान में उसके सदस्य होते हैं। इससे हमें यह समझने में भी मदद मिलती है कि संस्कृति किस प्रकार व्यक्तियों को उनके समाज में एकीकृत होने में सहायता करती है।

2.6 सांस्कृतिक बहुलता

आप किसी देश को लें तो आप देखेंगे कि वहाँ अलग–अलग धर्म, विश्वास, जातियाँ, और नस्लों के लोग हैं और उनकी अपनी–अपनी जीवन–शैली, संस्कृति और जातीय पहचान होती है। ऐसा देश सांस्कृतिक बहुलता वाला देश होता है। सांस्कृतिक बहुलवाद एक ऐसा प्रतिमान अथवा व्यवस्था होती है जिसमें अलग–अलग विश्वास, धर्म, जाति और आस्था के लोग मिल–जुल कर काम कर सकते और रह सकते हैं और अपने विश्वास और पहचान को बनाए रख सकते हैं, और जन्म या इच्छा के आधार पर दूसरों के साथ समान स्तर पर रह सकते हैं। बहुलतावादी संस्कृति का अर्थ होता है एक समाज विशेष के अंदर अनेक उपसंस्कृतियों का समान आधार पर सह अस्तित्त्व। इस प्रकार की बहुलतावादी संस्कृति में विभिन्न उप संस्कृतियों को मान्यता प्राप्त होती है।

विभिन्न उपसंस्कृतियों में रहने वाले लोग विभिन्न ढंग से जीवन जीते हैं, विभिन्न जीवन पद्धतियों का अनुसरण करते हैं और अपने सांस्कृतिक प्रतिमानों के अनुसार सोचते भी हैं। इस प्रकार, सांस्कृतिक बहुलता सांस्कृतिक अनेकता की अवधारणा को भी जन्म देती है। सांस्कृतिक भिन्नता के चलते एक जनसमूह दूसरे जनसमूह से और एक संस्कृति दूसरी संस्कृति से पृथक हो जाती है। प्रत्येक समूह की विशिष्टता उसकी अपनी भाषा, इतिहास अथवा वंश, धर्म, वस्त्र अथवा अलंकरण की शैली से निर्धारित होती है। बहुलता समूहों की सांस्कृतिक विशिष्टताएँ सामाजिक स्तर पर एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होती हैं, और इन्हें अकेली एक ही पीढ़ी में नहीं सीखा जाता।

संरचना के स्तर पर, एक संस्कृति वाले ऐसे कुछ बहुलता समूह आकार में छोटे या बड़े हो सकते हैं, किंतु वे सभी आपस में एक जुटता की भावना का प्रदर्शन करते हैं। सामान्य तौर पर, इस प्रकार के बहुलता समूहों की सदस्यता खुली नहीं होती, अर्थात् कोई व्यक्ति जन्म के आधार पर ही इनका सदस्य हो सकता है, और इनके संसाधनों का इस्तेमाल केवल इनके सदस्य ही कर सकते हैं। किंतु, ये सभी समूह समानता के आधार पर रहते

हैं और उनमें से किसी को भी नैतिकता के अर्थ में सर्वोच्च नहीं माना जा सकता। इसके अतिरिक्त, कोई एक समूह किसी दूसरे समूह को अपनी जीवन–पद्धति अपनाने को बाध्य नहीं कर सकता।

बहुलतावादी उपसंस्कृति में आने वाले प्रत्येक समूह का एक सामूहिक मत होता है और उनके साझा दायित्व दूसरों की इच्छाओं और अभिप्रायों से भिन्न होते हैं। प्रत्येक समूह के सदस्यों की समान आस्थाएँ, समान अधिकार और समूह के प्रति समान कर्तव्य होते हैं और वे उन्हें बनाए रखने और आत्मसात करने के लिए प्रयास भी करते हैं।

भारत के ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में सांस्कृतिक बहुलता के दर्शन होते हैं। यहाँ आदिवासियों, ग्रामीणों और शहरियों की आबादियां हैं। यहाँ भाषा, धर्म, जाति, खानपान, पहनावा और जीवन–पद्धति के आधार पर लोगों और संस्कृतियों की अनेकता देखने को मिलती है। ये सब एक बहुत्तर समाज की उपसंस्कृतियों का निर्माण करते हैं, जिसे हम भारतीय समाज कहते हैं। यह अनेकता शहरी क्षेत्रों में भी पहुँची है, किंतु वहाँ यह इतनी स्पष्ट नहीं है जितनी आदिवासी और ग्रामीण क्षेत्रों में। शहरी क्षेत्रों में जटिल किस्म की उपसंस्कृतियाँ मिलती हैं।

बोध प्रश्न III

टिप्पणी : क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।
ख) इस इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1) सांस्कृतिक बहुलता क्या होती है?

.....

.....

.....

.....

.....

2.7 सारांश

इस इकाई में हमने यह सीखने का प्रयास किया है कि संस्कृति क्या होती है और समाज क्या होता है। संस्कृति हमारे जीने की शैली होती है और समाज लोगों का अंतःक्रियात्मक समूह। संस्कृति की अनेक प्रकार से परिभाषा की गई है, जिनमें ई.बी. टेलर की परिभाषा सर्वाधिक स्वीकार्य है। अन्य परिभाषाओं में भी संस्कृति और समाज के विभिन्न पहलुओं को प्रस्तुत किया गया है। इन सभी से हम एक सामाजिक प्राणी और एक सांस्कृतिक प्राणी के रूप में स्वयं के बारे में सोचने को उद्यत होते हैं कि हमारा सामाजिक जीवन किस प्रकार का है और हम इसे किस तरह परिभाषित कर सकते हैं, और संस्कृति किस–किस प्रकार की होती है और हम उसे कैसे समझ सकते हैं, और विभिन्न संस्कृतियाँ किस प्रकार आपस में संवाद करती हैं।

इस इकाई में हमने समाज, संस्कृति और व्यक्ति के बीच एक संबंध स्थापित करने का भी प्रयास किया है। इमने देखा कि वे एक दूसरे से कैसे जुड़े, कैसे गुंथे हैं। एक के बगैर दूसरे का कोई अर्थ नहीं है। संस्कृति को भौतिक और अभौतिक की श्रेणियों में विभाजित किया गया है। सामाजिक और सांस्कृतिक दोनों ही तत्त्व एक व्यक्ति की सामाजिक बढ़त और विकास को दिशा देते और निर्धारित करते हैं और उसे उसके समूह में समूह की इच्छाओं और अपेक्षाओं के अनुसार एकीकृत होने में उसकी मदद करते हैं। इसके बदले

में व्यक्ति अन्य व्यक्तियों से अपने संबंधों को विस्तार देकर अपनी संस्कृति को समृद्ध करता है। सांस्कृतिक बहुलता को इस संदर्भ में दिखाया गया है कि विभिन्न उपसंस्कृतियाँ समान आधार पर साथ–साथ रहती हैं और अपनी अलग पहचान भी बनाए रखती हैं।

2.8 शब्दावली

समाज : एक निश्चित जीवन–पद्धति का अनुसरण करने वाले व्यक्तियों का संगठित, अंतःक्रियात्मक समूह।

संस्कृति : एक जटिल समग्रता जिसमें ज्ञान, विश्वास, कला, नैतिकताएँ, विधान, प्रथा, और वे सभी क्षमताएँ और आदतें आ जाती हैं जिन्हें मनुष्य ने समाज के सदस्य के रूप में अर्जित किया होता है।

संस्कृतिकरण : व्यक्ति जो अपने समूह अथवा समाज के लिए प्रासंगिक स्वीकार्य व्यवहार सीखता है, उस प्रक्रिया को संस्कृतिकरण कहते हैं। (अंग्रेजी में : Enculturation)

सांस्कृतिक बहुलता : एक ही समाज के अंदर अनेक उपसंस्कृतियों की समान आधार पर सह अस्तित्त्व की स्थिति।

2.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

बॉटोमोर, टी.बी. (1975), *सोशियोलॉजी,* ब्लैकी एंड सन (इंडिया) लि.।

केसिंग, रोजर एम. और केसिंग, फीलिक्स एम. (1968), *न्यू पर्स्पेक्टिव्स इन कल्चरल ऐंथ्रोपोलॉजी,* लंदन राइनहार्ट एंड विलसन।

हर्स्कोविट्स, एम.जे. (1969), *कल्चरल ऐंथ्रोपोलॉजी,* नई दिल्ली, ऑक्सफ़र्ड एंड आई बी एच पब्लिशिंग कं.।

क्रोबर, ए.एल. (1967), (भारतीय सं.), *ऐंथ्रोपोलॉजी,* नई दिल्ली, ऑक्सफेर्ड एंड आईबीएच पब्लिशिंग कं.।

क्रोबर, ए. एल. और क्लाइड क्लुकहोन (1985), *कल्चर,* न्यू यॉर्क, विंटेज बुक्स।

शुस्की, अर्नेस्ट एल. (1975), *दि स्टडी ऑव कल्चरल ऐंथ्रोपोलॉजी,* लंदन होल्ट राइनहार्ट एंड विंस्टन इंड.।

स्मेल्सर, नील जे. (1993), *सोशियोलॉजी,* नई दिल्ली, प्रेंटिस हाल ऑव इंडिया।

मजूमदार, डी.एन. और टी.एन.मदान (1956), *एन इंट्रोडक्शन टु सोशल ऐंथ्रोपोलॉजी,* मुम्बई, एशियन प्रेस।

2.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न I

1) समाज "व्यक्तियों का एक संगठित, अंतःक्रियात्मक समूह होता है जो एक निश्चित जीवन पद्धति का अनुसरण करते हैं"। मनुष्यों के व्यवहार में समानता जरूरी होती है। यही समानता उन्हें एक सूत्र में बांधती है और वे एक निश्चित समय और स्थान में एक–दूसरे की संगति में जीवन जीते हैं।

2) समाज मनुष्य के लिए इसलिए आवश्यक है क्योंकि मनुष्य समाज में उसके सदस्य के रूप में रहकर अपनी सारी आवश्यकताएँ पूरी करता है। इन आवश्यकताओं की पूर्ति उन अपेक्षाओं और व्यवहार के प्रतिमान के आधार पर होती हैं जिसे हम संस्कृति कहते हैं। बच्चे को विकास के लिए और समाज में व्यवहार सीखने के लिए भी लगातार सहारे की जरूरत होती है। माता–पिता और समाज के अन्य सदस्य उसे यह सहारा देते हैं। इस प्रकार के सहारे के अभाव में व्यक्ति शायद अपने सामाजिक और भौतिक परिवेशों के साथ समायोजन की योग्यता प्राप्त नहीं कर सकेगा। समाज अपने सदस्य को उसके परिवेश और वातावरण से परिचित कराता है। वह व्यवहार करना, कर्म करना, प्रतिक्रिया करना और अपनी भूमिकाओं, अधिकारों और कर्तव्यों के बारे में सीखता है।

बोध प्रश्न II

1) संस्कृति की सर्वाधिक स्वीकार्य परिभाषा ई.बी.टेलर ने दी है। टेलर के अनुसार – "संस्कृति एक ऐसी जटिल समग्रता है जिसमें ज्ञान, विश्वास, कला, नैतिकताएँ, विधान, प्रथा, और वे सभी क्षमताएँ और आदतें आ जाती हैं जिन्हें मनुष्य ने समाज के सदस्य के रूप में अर्जित किया होता है"। संस्कृति की मुख्य विशेषताएँ ये हैं कि यह सीखी गई और सामाजिक होती है। यह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होती हैं। इसके अतिरिक्त, इसका विकास एक लंबे समय में हुआ होता है और इसने अनेक बदलाव देखे होते हैं। संस्कृति समाज के सदस्यों को साझा अर्थ और एक साझा अस्मिता का बोध देकर उन्हें एक सूत्र में बांधती है।

बोध प्रश्न III

1) एक ही समाज के अंदर अनेक उपसंस्कृतियों की समान आधार पर सह–अस्तित्त्व की स्थिति को सांस्कृतिक बहुलता कहा जाता है। इन उपसंस्कृतियों को बृहत्तर समाज की मान्यता प्राप्त होती है। एक समाज में अलग–अलग उपसंस्कृतियों के लोग अलग–अलग पद्धति से जीते हैं, फिर भी वे सब मिलकर एक होते हैं। प्रत्येक उपसंस्कृति की अपनी अलग विशेषताएँ होती हैं जो अलग भाषा, खानपान, पहनावा, नियमों, मूल्यों और अन्य सांस्कृतिक प्रतिमानों के रूप में व्यक्त होती हैं। बहुलतावादी संस्कृतियों की अपनी अलग पहचान होती है और सामान्य तौर पर वे अनिश्चित भूभागों में फैली होती हैं। कभी–कभी तो एक उपसंस्कृति की सीमाएँ दूसरी उपसंस्कृति को छूती हैं। स्पष्ट रूप में यह कहना संभव नहीं होगा कि एक उपसंस्कृति कहाँ समाप्त होती है और दूसरी उपसंस्कृति कहाँ से शुरू होती है, किंतु उस क्षेत्र में कुछ दूरी तक यात्रा करने पर उपसंस्कृति की विशिष्टताएं दिखाई देने लग जाती हैं और स्पष्ट हो जाती हैं।

इकाई 3 सामाजिक स्तरीकरण

रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 सामाजिक स्तरीकरण : सैद्धान्तिक बोध

3.3 वर्ग की अवधारणा

3.4 जाति की अवधारणा और इसकी विशेषताएँ

3.5 जाति और सामाजिक परिवर्तन

3.6 भारतीय समाज पर जाति प्रथा का प्रभाव

3.7 सारांश

3.8 शब्दावली

3.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

3.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

3.0 उद्देश्य

इस इकाई में आपका परिचय भारतीय संदर्भ में सामाजिक स्तरीकरण की अवधारणा एवं इसके परिणामों से होगा। विशेष रूप से भारतीय समाज हमारी चर्चा का केन्द्रीय बिन्दु होगा। धन सम्पत्ति एवं प्रतिष्ठा में अन्तर का भारतीय समाज में व्याप्त होना समाज–सुधारकों, राजनीतिक नेताओं और नीति निर्धारकों के लिये एक बड़ी चिन्ता की बात है।

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :

- सामाजिक स्तरीकरण की अवधारणा वर्ग और जाति इसके विभिन्न रूपों को समझ सकेंगे;
- जाति प्रथा में परिवर्तन और इसके लिये जिम्मेवार कारकों की पहचान कर सकेंगे; और
- भारतीय समाज पर जाति प्रभा के प्रभाव को जान सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

मनुष्य की सदा से ही यह इच्छा रही है कि समतावादी समाज की स्थापना हो जहाँ सभी मानव–प्राणी बराबरी के दर्जे पर हों पर यह उत्तम विचार अब तक के ज्ञात इतिहास में कभी भी पूर्ण रूप से प्राप्त नही किया जा सका है और आधुनिक समाजों में तो बिल्कुल भी नही जिसे अन्य किसी काल की अपेक्षा बराबरी की ज्यादा आवश्यकता है। राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों द्वारा किये गये विकास कार्यों के संकेतक यह बताते हैं कि वास्तव में विषमतायें पिछली शताब्दी में देशों के अन्दर और देशों के बीच भी बढ़ी है।

कई एजेन्सियाँ विभिन्न स्तरों पर आर्थिक एवं सामाजिक विषमता को कम करने के लिए प्रयासरत हैं। कई आधुनिक राज्यों ने सामाजिक विषमता को कम करने की बड़ी

जिम्मेवारी उठाई है। अन्तर्राष्ट्रीय संगठन जैसे यू.एन.डी.पी, विश्व बैंक एवं एशियाई विकास बैंक आदि गरीबी कम करने के लिए नीतियो के निर्धारण में एवं संसाधनो के बेहतर इस्तेमाल में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। स्वैच्छिक संगठन भी उन विकास कार्यक्रमों को लागू करने में बढ़ चढ़ कर हिस्सा ले रहे हैं जिनका मुख्य उद्देश्य गरीबी को कम करना और लोगों को सक्षम बनाना है। लेकिन स्पष्ट है कि ये प्रयत्न केवल आंशिक रूप से ही सफल हुए हैं।

लोगों के विकास के लिए कई तरह की सरकार द्वारा प्रायोजित कार्यक्रम जैसे – मनरेगा, एन.आर.एल.एम., सामाजिक सुरक्षा योजना इत्यादि हैं जिसके द्वारा समुदाय का विकास भी हो सकता है।

सामाजिक कार्यकर्ता सामाजिक स्तरीकरण विन्यास में विशेष रूचि रखते हैं। सामाजिक कार्य का उद्देश्य व्यक्तियों, समूहों और समुदायों की सामाजिक कार्यप्रणाली को सुधारने का है। समाज में सामाजिक स्तरीकरण के प्रकार और उसकी संरचना व्यक्ति और समूह के व्यवहार पर बहुत प्रभाव डालता है। उदाहरणतया, एक केस कार्यकर्ता ऐसे व्यक्ति के साथ सम्पर्क बनाता है जो लगातार व्यापार में घाटा उठाना रहा हो, उसको अपनी साख का गिरने का डर सताता हो। किसी व्यक्ति की सामाजिक पृष्ठभूमि समझने के लिये उसकी श्रेणी और जातिगत स्थिति की जानकारी बहुत जरूरी है। इसी प्रकार समूह कार्य करने के लिये इसी पद्धति के अनुरूप समूह बनाये जाते हैं। सामुदायिक संगठन में इस बात की और ज्यादा आवश्यकता है क्योंकि भारतीय समाज में विकास के अवसर उस समुदाय की श्रेणी और जाति की स्थिती पर निर्भर करती है।

समाज को साथ लेकर आगे लाना सामाजिक कार्यकर्ता जो सामुदायिक संगठन एवं सामुदायिक विकास के क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं की एक अपरिहार्य जिम्मेदारी है।

3.2 सामाजिक स्तरीकरण : सैद्धान्तिक बोध

सामाजिक स्तरीकरण एक प्रणाली है जिसके द्वारा समाज लोगों को श्रेणियों के पदानुक्रम में संदर्भित करता है। संयुक्त राज्य अमेरिका में, यह पूरी तरह से स्पष्ट है कि कुछ समूह अन्य समूहों से बड़ी स्थिति, शक्ति, एवं धन रखते हैं। यह मतभेद सामाजिक स्तरीकरण को बढ़ावा देता है।

सामाजिक स्तरीकरण की परिभाषा धन, प्रतिष्ठा और शक्ति जैसे आयामों के आधार पर पद्सोपान स्थितियों में व्यक्तियों के समूहों की व्यवस्था के रूप में की जा सकती है। सामाजिक ढांचे में अपनी एक जैसी स्थितियों के कारण उनमें एक सामान्य चेतना विकसित हो जाती है कि वे क्या हैं, उनकी सांझी समस्यायें कौन सी हैं, और इन समस्याओं को दूर करने के लिये उन्हें क्या करना चाहिए। सामाजिक स्तर ही सामाजिक विषमता का विशाल रूप है। समाजशास्त्री संकेत करते हैं कि मिश्रित औद्योगिक देश जैसे संयुक्त राज्य अमेरिका में मुख्य सामाजिक विषमता का रूप व्यक्ति आधारित तथा व्यवसाय आधारित विषमताएँ हैं। ऐसी सूचियाँ तैयार की गई है जो विभिन्न व्यवसायों की जनता की नजर में प्रतिष्ठा कैसी है ये दर्शाती है। ऐसी एक सूची के अनुसार एक चिकित्सकीय डाक्टर शिखर पर हैं तो एक सफाई कर्मचारी सबसे नीचे। एक सामाजिक कार्यकर्ता का दर्जा मध्य में है।

अत्यधिक गतिशील व्यक्ति की श्रेणी का क्रम बदलता रहता है और इस तरह समूह की जागरूकता के विकास में अवरोध पैदा करता है। क्योंकि समूह की जागरूकता के विकास के लिये यह आवश्यक है सामाजिक ढाँचे की स्थिती में स्थायित्व हो तथा व्यक्ति उस समूह में लम्बे समय तक रहे तथा गतिशीलता के पड़ाव सीमित हो। भारत में सामाजिक स्तर के दो मुख्य कारक है जाति एवं श्रेणी जिसके बारे में हम आगे पढ़ेगें।

दो मुख्य सामाजिक चिन्तक हुए हैं कार्ल मार्क्स और मेक्स वेबर, जिन्होने सामाजिक स्तर की प्रकृति, प्रकार और इसके परिणामों के बारे में विस्तार से लिखा है।

मार्क्स द्वारा किए गए समाज के विश्लेषण में आर्थिक घटक प्रमुख भूमिका व्यक्त की है। उसने वर्ग सिद्धान्त के अनुसार मतलब है ऐसे लोगों का एक समूह जो उत्पादन की ताकतों के प्रति एक समान चिन्ता करने वाले है। उदाहरण के लिये आधुनिक समाज में प्रत्येक व्यक्ति जो मिलों का मालिक है वह पूँजीवादी है और वह प्रत्येक व्यक्ति जो मजदूरी के लिये इन कारखानों में काम करते हैं, कामगार हैं। इसी प्रकार एक भूमि पति समाज में वे व्यक्ति जिनके पास अपनी जमीन है जागीरदार कहलाते हैं और जो उनके लिए कार्य करते हैं वे कृषक या श्रमिक कहलाते हैं। उसका यह भी विश्वास था कि इन अलग अलग समूहों के हितों के बीच कोई सामंजस्य नही हो सकता अर्थात् एक का फायदा दूसरे की क्षति से ही होता है। जिसका परिणाम यह निकला कि कामगार, श्रमिक अथवा दास इन सबका शोषण अपने अपने समाज में पूंजीवादियों, जागीरदारों अथवा दास–मालिकों द्वारा होता रहा। समाज की अन्य सभी संस्थायें धार्मिक, राजनैतिक या शैक्षणिक किसी न किसी रूप में इस शोषण में सहायक रही हैं। उदाहरणतया धर्म भाग्यवाद का उपदेश देते हैं जो लोगों को यह बताते हैं कि उनके दुःखों को जा सकता और पीड़ा को शान्ति से सहने से उनको मृत्यु के बाद स्वर्ग में स्थान मिलेगा। इसी प्रकार सरकारें भी निर्धन वर्गों द्वारा आर्थिक अवसरों में न्याय की माँग को कानून एवं व्यवस्था दुहाई देकर अथवा विद्रोही करार देकर बल प्रयोग द्वारा कुचलने का प्रयास करती है।

मैक्स वेबर, दूसरे एक प्रसिद्ध चिंतक हैं जो मार्क्स के कई विचारों से तो सहमत थे पर कुछ मुद्दों पर असहमत भी थे। वे मार्क्स की इस बात से सहमत थे कि सामाजिक स्तरीकरण की विषमता का प्रमुख कारक आर्थिक है जिससे पदानुक्रम व्यवस्था फलीभूत होती है लेकिन वे इसके लिये कुछ अन्य कारक भी बताते हैं स्तरीकरण। उनके अनुसार स्तरीकरण के तीन आयाम हैं : धन, पद और शक्ति। वेबर ने यह भी समझाया कि वर्गों का निर्माण अकेले उत्पादनकारी शक्तियों के स्वामित्व से नही बनता। यह बाजार की हालात पर भी निर्भर करता है जिसके द्वारा किसी व्यक्ति को दूसरों के मुकाबले में अपनी क्षमताओं का अहसास होता है। उदाहरण के तौर पर एक प्रख्यात वकील या डाक्टर एक खेत का या कारखाने का स्वामी नही होता लेकिन उसके पास विशेष तरह की योग्यता है जो अन्य बहुत से व्यक्तियों के पास नही है। इसी कारण इन पेशेवरों को लुभावनी तनखायें दी जाती हैं। वेबर यह ध्यान दिलाता है कि यदि ऐसे व्यक्ति की बाजार में स्थिति अच्छी है तो वह व्यक्ति धनवान बन जाता है और परिणाम स्वरूप उच्च वर्ग की सदस्यता पा लेता है। स्तरीकरण का दूसरा आयाम है और यह किसी व्यक्ति की प्रतिष्ठा को नापने का समाज का एक पैमाना है और यह उस व्यक्ति के जीवन यापन जीवनशैली पर आधारित है। एक व्यक्ति जो ऊँचे ओहदे पर स्थापित है उसको सम्मान मिलेगा ही, उसके पद के कारण, न कि उसकी आर्थिक स्थिति के कारण तीसरा आयाम है– शक्ति : जो किसी व्यक्ति की योग्यता है, लोगों की मर्जी के बिना भी उनके कार्यों को प्रभावित कर सकने वाले अपने प्रभुत्व के कारण। उदाहरण के तौर पर गाँव के किसी समुदाय का मुखिया चाहे वह धनी न हो, और न ही उसके पास ऊँचा ओहदा लेकिन समुदाय का मुखिया होने की स्थिति ही उसकी शक्ति बन जाती है। वेबर इस बात से सहमत है कि बहुत से मामलों में ये तीनों तत्त्व धन, पद और शक्ति : आपस में मिले हुये होते हैं। एक व्यक्ति जिसके पास धन और शक्ति है वह ऊँचा पद भी आसानी से पा लेता है। यद्यपि ऐसा बहुत जगह देखने को मिल जाता है पर सभी जगह ये बात सत्य नही होती। उदाहरणतया एक दलित काम में निपुण होकर अच्छी आर्थिक स्थिति प्राप्त कर लेता है पर उसको जो सम्मान मिलना चाहिये वह नही मिल पाता, क्योंकि हिन्दू धर्म की जाति में उसे निम्नस्तर का माना है। उसकी जाति के कारण। वेबर ने इन आयामों को जोड़ने के बाद सामाजिक स्तर की कुछ विस्तृत व्याख्या प्रदान करने में सफलता प्राप्त की है।

बोध प्रश्न I

टिप्पणी : क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।
ख) इस इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1) वेबर के अनुसार सामाजिक स्तरीकरण के क्या आयाम है?

.....

.....

.....

.....

3.3 वर्ग की अवधारणा

एक वर्ग से तात्पर्य है व्यक्तियों का ऐसा समूह जो कमोबेश एक जैसी स्थिति में हैं। धन की प्राप्ति होने के बाद व्यक्ति उन सेवाओं और वस्तुओं को भी पा लेता है जो दुर्लभ होती हैं और लोगों द्वारा मूल्यवान समझी जाती हैं। ये वस्तुएँ और सेवाएँ अलग अलग समाज में अलग अलग होती हैं। एक परम्परागत समाज में एक धनी व्यक्ति जमीनें खरीद लेता है या सोना रखता है जबकि आधुनिक समाज में वह स्टाक मार्केट में धन विनियोग कर सकता है या विलासितापूर्ण कारें खरीद सकता है या छुट्टियों में विदेश भ्रमण कर सकता है। यदि धन को विचार पूर्वक विनियोग किया जाये तो पैसा और पैसे को बढ़ाने में सहायक होता है।

वर्ग अवधारणा और इसकी विशेषताएँ

अधिकांश आधुनिक समाजों में वर्ग आधारित स्तरीकरण पाया जाता है। फिर भी परम्परागत स्तरीकरण के अनेक रूप आधुनिक सामाज में दिखाई देते हैं जैसे जाति प्रथा एवं सामंत प्रथा का भारत में पाया जाना। लेकिन आर्थिक विकास के बल पर वर्ग आधारित स्तर बढ़ता जा रहा है, एक महत्वपूर्ण ढंग से। श्रेणी प्रथा की कुछ मुख्य विशेषतायें निम्न प्रकार हैं –

वर्ग तुलनात्मक रूप से एक मुक्त स्तरीकरण प्रणाली है।

किसी समाज को प्रायः मुक्त या बन्द इस आधार पर कहा जाता है कि इसके सदस्यों के लिये सामाजिक उत्थान की गतिशीलता के लिए किस प्रकार के अवसर उपलब्ध है। इतना ही महत्वपूर्ण है समाज का अपने सदस्यों की गति शीलता के प्रति दृष्टिकोण या व्यवहार। यदि समाज अपने सदस्यों को उच्च स्यान प्राप्त करने के अवसर प्रदान करता है और उन्हें प्रोत्साहित करता है तो उस समाज को मुक्त स्तरीकरण समाज कहते हैं। दूसरी तरफ जो समाज अपने सदस्यों को अग्रसर होने के लिए सीमित अवसर देता है या नहीं देता है और इसके नैतिक मूल्य सदस्यों को उच्च स्थान प्राप्त करने के प्रयासों में रूकावट करते हैं उस समाज को बन्द स्तरीय समाज कहा जाता है। विकास की गति के साथ साथ स्तरीकरण की प्रणाली खुली और उपलब्धि केन्द्रित बन जाती है।

वर्ग प्रणाली एक खुली स्तरीकरण प्रणाली है। एक व्यक्ति अपनी उपलब्धियों के बल पर वर्ग में ऊँचा स्थान पा सकता है। ऐसे व्यक्तियों के उदाहरण सामने आते हैं जो अपनी कठोर मेहनत और उपलब्धियों के बल पर गरीबी से उठ कर लखपति बने हैं। आधुनिक समाज ऐसे व्यक्तिों को सराहना की दृष्टि से देखता है क्योंकि वे दूसरों के लिये भी प्रेरणा स्त्रोत बनते हैं।

आधुनिक समाजों में समाजिक गतिशीलता बुद्धिमत्ता, योग्यता, सक्षमता और व्यक्ति की उपलब्धिर्यों पर आधारित होती है। फिर भी समाजों में, खुलेपन के बावजूद, कुछ तत्त्व जैसे

सामाजिक–आर्थिक पृष्ठभूमि, पैतृक स्तर और संसाधन, सामाजिक ताना–बाना और कुछ अनाम तत्त्व व्यक्ति की गतिशीलता को निर्धारित करने में अहम भूमिका निभाते हैं। क्योंकि ये तत्त्व किसी व्यक्ति के स्वंय के नियंत्रण में नहीं होने और उसको लाभान्वित करने हेतु तत्काल संशोधित नही किये जा सकते, ये नही कहा जा सकता कि आधुनिक समाज भी पूर्ण रूप से मुक्त समाज है। यही वजह है कि आधुनिक समाजों को हम मुक्त समाज की श्रेणी रख सकते हैं। हमारा कहना कि अन्य समाजों के मुकाबले में श्रेणी आधारित समाज अपेक्षाकृत मुक्त समाज है। आगे हम जाति प्रणाली का अध्ययन करेगें जो अपेक्षाकृत बन्द प्रणाली है।

परम्परागत समाजों में सामाजिक स्तरीकरण का आधार निर्धारण है जबकि वर्ग आधारित समाज, उपलब्धियों के आधार पर महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। दूसरे शब्दों में परम्परागत एवं आधुनिक स्तरीकरण का अन्तर मुख्य रूप से स्थिति और जबरन थोपी गई प्राप्त उपलब्ध स्थिति का है जो सामाजिक स्तरीकरण का आधार है।

आधुनिक समाज में प्रतियोगिता का स्तर बहुत ज्यादा है और वही जीतता है जो सबसे ज्यादा उपयुक्त है। सामाजिक कार्यकर्ताओं को उपलब्धि आधारित समाज के दो निष्कर्षों को याद रखना होगा। क्योंकि उपलब्धियाँ ही पहचान पाती है, व्यक्ति की असफलता को दूसरे लोग निम्न स्तर से देखते हैं और इस प्रकार वे अपनी प्रतिष्ठा खो देते हैं। आप समाचार पत्रों में स्कूली बच्चे के बारे में पढ़ते हैं कि कुछ बच्चे विद्यालय परीक्षा में फेल हो जाने पर आत्महत्या का रास्ता अपना लेते हैं। ये महान उपलब्धियों को पाने की लालसा एवं दूसरों की उच्च आकांक्षा है जो योग्य छात्रों को ऐसा कठोर कदम उठाने को मजबूर करती है। ये महान उपलब्धि आधारित समाज दूसरे स्वास्थ्य, शिक्षा और आवास जैसी न्यूनतम आवश्यकतायें अपने व्यक्तियों को प्रदान करती है ताकि वे प्रतियोगिता के लिये सक्षम हो सके। भारत जैसे देश में हम देखते हैं कि ये आवश्यक सुविधायें भी सभी को उपलब्ध नही है और बहुत से लोग दूसरों से मुकाबला करने में अयोग्य होते हैं, समान स्थितियों में भी बहुत अन्तर पाया जाता है। इस प्रकार से लोगों के लिए ये स्थिति अनुचित बन जाती है इस प्रकार सरकार और स्वंयसेवी संगठन कल्याणकारी एवं विकास कार्यक्रम आयोजित करते हैं ताकि वंचित व्यक्ति भी योग्य बने एवं समाज की मुख्य धारा में शामिल हो जाएँ।

भारत में वर्ग प्रणाली का प्रभाव

किसी खास वर्ग या समूह की सदस्यता इसके सदस्यों के व्यवहार को प्रभावित करती है। यह समाज में उनकी स्थिति का अहसास कराती है। लेकिन भारतीय संदर्भ में जाति एवं उससे जुड़े मुद्दों को ज्यादा अहमियत दी जाती है, भारत में वर्ग की विशेषताएँ पाश्चात्य समाज के मुकाबले एकदम अलग है। भारत में वर्ग एवं जाति के वर्ग साथ साथ विद्यमान हैं और श्रेणी के वर्ग जैसे उच्च, मध्यम या निम्न, ये जाति के वर्गों के समानान्तर है। वे इकट्ठे मिलकर ही किसी व्यक्ति की समाज में हैसियत, शक्ति और प्रतिष्ठा को निर्धारित करते हैं। अध्ययनों से पता चलता है कि उच्च श्रेणी वाले प्रबल रूप से ऊँची जातियों से सम्बन्धित हैं जो एक जातिगत दी गई हैं। यद्यपि पिछले दशकों में इसमें महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं तो भी यह स्थिति अब भी विद्यमान है।

संसाधनों का सग्रंह उनका वितरण, जिस में शिक्षा भी शामिल है, का निर्धारण व्यक्ति की स्थिति के अनुसार होता है। श्रेणी या जाति की भाषा में जो ऊँचाई पर हैं उपलब्ध सुविधाओं का अधिकांश भाग उनके नियंत्रण में है और आबादी का एक बड़ा हिस्सा गरीबी रेखा के आस पास या उसके नीचे की स्थिती में पिछड़ा हुआ है। वैश्वीकरण एवं उदारीकरण के प्रयासों ने अति प्राप्य एवं कुछ नहीं की खाई को और चौड़ा किया है, गरीब और अमीर के भेद, शहरी एवं ग्रामीण के भेद, तथा ऊँची जाति, नीची जाति श्रेणी एवं निम्न जाति के भेद को गहरा किया है।

3.4 जाति की अवधारणा और इसकी विशेषताएँ

भारत में जाति एक बहुत विवादित विषय है। कास्ट शब्द ;बौज्द्ध स्पेनिश भाषा के कास्टा ;ब्ंजद्ध से लिया गया है जिसका अर्थ है 'नस्ल'। भारत में इसका आशय जाति एवं इससे जुड़े सामाजिक व्यवहार से है। जाति प्रथा भारतीय सामाजिक जीवन को कई तरह से प्रभावित करती है क्योंकि यह अपने सदस्यों को ऊँच–नीच के बन्धनों में बांधती है।

चार वेदों में से सबसे अधिक प्रमुख और प्राचीन ऋगवेद के अनुसार चार वर्ण होते हैं जो श्रेणीबद्ध किये गये हैं– ब्राहमण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र। ब्राहमण का कार्य पूजा करना एवं शिक्षा देना एवं शिक्षक का क्षत्रिय का कार्य है युद्ध और शासन करना। वैश्य का अर्थ है व्यापारी एवं अन्य साधारण व्यक्ति। शूद्र इस प्रथा में निम्न स्तर पर है और उनके जिम्मे है तीनों वर्षों की सेवा करना। कुछ इतिहासकारों के अनुसार एक पाचवां वर्ण भी है, अछूत, और उनको समाज का हिस्सा नही माना जाता है। आदिम जाति एवं अन्य धर्मावलबिंयों को वर्ण व्यवस्था से अलग रखा गया है।

व्यक्ति किसी एक जाति में जन्म लेता है और जन्म के द्वारा ही उस जाति का सदस्य बन जाता है। एक व्यक्ति अपनी जाति बदल नही सकता। लेकिन ऐसे सयोंग मिलते हैं जहाँ जातियों ने समग्र रूप से अपनी आर्थिक दशा में सुधार करके और अपनी जीवन चर्या में परिवर्तन करके समाज में ऊँची हैसियत का दावा किया है। ऐसे दावे स्वीकार हुए भी और नही भी हुए। आधिकारिक जातियों ने ऐसे दावो के विपरीत प्रतिक्रिया भी जताई है। लेकिन यदि कही दावे स्वीकृत हुये भी तो जाति व्यवस्था अक्षुण्ण रही है। फिर भी संस्कृतिकरण, अन्तर्जातीय विवाह और शिक्षा के प्रसार ने जाति व्यवस्था की कठोरता अवश्य कम किया है।

एक महान मानवता विज्ञानी जी0एस0घुरये, के अनुसार जाति की छः विशेषताएँ होती हैं।

जातिगत पदानुक्रम

जातिगत पदानुक्रम व्यक्तियों और समूहों के बीच उच्च–निम्न का संबंध है। यद्यपि प्रत्येक समाज एक अथवा दूसरे रूप में पदानुक्रम होता है, परन्तु इसको निर्धारित करने का सिद्धान्त प्रत्येक समाज में अलग अलग होता है। भारत में जाति ही सामाजिक पदानुक्रम का मुख्य आधार है। धार्मिक शुद्धता या अशुद्धता का अंश जाति विशेष के पास कितना है यह जातिगत पदानुक्रम में इसकी स्थिति को निर्धारित करता है। इसमें धन और शक्ति के कारक इतना महत्व नहीं रखते हैं। उदाहरण के तौर पर एक ब्राहमण जिसकी आर्थिक हालत भले ही एक राजपूत की तुलना में कमजोर हो फिर भी उसकी धार्मिक शुद्धता के चलते उसे समाज में श्रेष्ठ दर्जा मिलता है।

यद्यपि वास्तव में राजनीतिक एवं आर्थिक तत्त्व किसी भी जाति की स्थिति का निर्धारण करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। समाजशास्त्रियों का कहना है कि ऊँची धार्मिक स्थिति वास्तव में ऊँची सामाजिक स्थिति का आईना नही होती। उदाहरण के तौर पर एक राजपूत की किसी धार्मिक अनुष्ठान में एक ब्राहमण के जितनी महत्वपूर्ण भूमिका नही होती लेकिन अन्य मामलों में वह एक ब्राहमण को कुछ ज्यादा प्रतिष्ठा देने में समर्थ होगा।

समाजशास्त्री एम0एन0श्री निवासन के अनुसार प्रमुख जाति समुदाय में वह जाति होती है जिसकी धार्मिक स्थिती ऊँची है, संख्या बल ज्यादा है और भौतिक साधन जैसे ध न–सम्पदा, भूमि एवं सत्ता तक पहुँच ज्यादा है। इन सभी तत्त्वों का सम्मिश्रण ही किसी जाति का स्थान ऊँचा बनाता है। यह अलग बात है कि प्रमुख जाति प्रायः गाँव की राजनीति एवं इसकी सामाजिक जिन्दगी में प्रमुख भूमिका निभाती है।

चयन के अनुसार न हो कर जन्म के आधार पर सदस्यता के कारण जातियां विकसित समूहों में विद्यमान हैं। व्यक्ति के अधिकार एवं कर्तव्य जातीय परिषद द्वारा नियत्रिंत होते हैं जो प्रत्येक जाति में होती हैं। इन जातीय–परिषदों के पास अपने सदस्यों के सामाजिक जीवन को नियमित रखने के लिये पर्याप्त शक्तियाँ होती हैं। यह अपराध करने पर अपराध ी को सजा देने के लिए अपने आदेश को लागू करने के लिये ये कई तरीके अपनाती हैं। कुछ तरह के अपराध जैसे ज़ार कर्म, मिलावट, दूसरों को चोट पहुँचाना, मारना आदि इनके लिये कई सजाओं का जैसे र्जुमाना करना, शारीरिक दण्ड इत्यादि से लेकर मृत्यु दण्ड तक का प्रावधान रखती हैं। कुछ जातियों के अपने अलग अलग देवी–देवता होते हैं जो कि बड़ी धार्मिक परम्पराओं का हिस्सा नही होते। इस प्रकार जाति के पास स्वायत्तता के पर्याप्त साधन होते हैं अपने सदस्यों के मुद्दों से निपटने के लिये जो कि सरकारी नियंत्रण से अलग होते हैं।

खान–पान और सामाजिक अन्तःक्रिया पर प्रतिबंध

पके हुये भोजन का आदान प्रदान विभिन्न जातियों के बीच, विशेष नियमों एवं शर्तों द्वारा निर्धारित होता है। कुछ जातियाँ अपने से अलग अन्य जातियों से खास तरह के भोज्य पदार्थ ही ग्रहण करती है सभी तरह के नहीं। खाद्य वस्तुओं को दो रूपों में विभाजित किया गया है पक्का और कच्चा। पक्का भोजन घी में तैयार किया जाता है और श्रेष्ठ समझा जाता है कच्चे की तुलना में जो पानी में पकाया जाता है। ब्राहमण लोग क्षत्रियों एवं वैश्यों से केवल पक्का भोजन ले सकते हैं लेकिन शूद्रों और अछूतों से नहीं। दूसरी तरफ क्षत्रिय ब्राहमण से केवल कच्चा भोजन ले सकता है लेकिन वैश्य से केवल पक्का भोजन लेता है जो जाति में उनसे नीचे आते हैं। भोजन के देने और लेने का यह भेद, लेन देन करने वाली जातियों की स्थिति पर आधारित होता है। ग्रामीण स्तर पर पदानुक्रम किस प्रकार कार्य करते है इसका वर्णन कुछ समाज शत्रियों ने किया है। समाज में इस तरह के मतभेद व्यवसाय में भी देखा जाता है। व्यवसाय कोई भी जाति के आधार रखे उसकी स्थिति के अनुसार विभाजित किया गया है।

इस प्रकार के भेदभाव जातियों के बीच दूर रहती है वहीं पर सामाजिक दूरी भी बनी रहती है। जातीयों में शारीरिक दूरी भी जाति की स्थिति को दर्शाती है। उदाहरण के लिये परम्परागत केरल समाज में एक नैयर एक नम्बूदरी के पास जा तो सकता है पर उसे छू नही सकता। जबकि एक अन्य जाति तिया (जो नैयर के मुकाबले निम्न है) के सदस्य को एक नम्बूदरी से 36 कदम की दूरी बनाये रखनी पड़ती है।

विभिन्न जातियों की नागरिक और धार्मिक अयोग्यताएँ एवं विशेषाधिकार

पदानुक्रम प्रणाली में विभिन्न जातियों के विभिन्न अधिकार और विशेषाधिकार होते हैं। जिसका परिणाम यह होता है कि सामाजिक जीवन जाति के आधार पर बंट जाता है। उत्तरी भारत के गाँवों में ऊँची जाति के लोग एक साथ रहते हैं जबकि छोटे जाति के लोगों को गाँव से बाहर रखा जाता है दक्षिणी भारत में सभी जातियों के पृथक पृथक रहने की प्रवति होती है।

घुरये उन्नीसवीं सदी के अन्तिम तथा बीसवीं सदी के प्रारम्भिक वर्षों के बहुत से ऐसे उदाहरण देते हैं जो यह बताते है कि किस प्रकार से उन पर यह अयोग्यताएँ जबरन थोप दी गई हैं। उदाहरण के लिये, विमाकोम में, जो राजसी स्टेट ट्रावनकोर का एक कस्बा है, शूद्रों को मन्दिर की गलियों में चलने की मनाही थी। प्रख्यात नेता महात्मा गांधी एवं पेरियार जैसे नेताओं द्वारा राष्ट्रव्यापी आंदोलन इन दमनकारी नीतियों के विरूद्ध चलाये जाने से स्थिती बदल गई। इसी तरह पूणे में शूद्रों को सुबह के समय और सध्यां के समय प्रवेश नहीं करने दिया जाता था। क्योंकि उसकी लम्बी परछाई ऊँची जाति के सदस्यों

को प्रदूषित कर देती थी। यह भी देखने को मिलता है कि अपराध करने पर सजा देने में भी भेद भाव वाले तरीके इस्तेमाल होते थे। उदाहरणतया चोरी के लिए पकड़े जाने पर ब्राहमण को केवल जुर्माना भरना होता था जबकि उसी अपराध के लिये एक शूद्र को शारीरिक दण्ड भुगतना होता था।

धार्मिक विश्वासों ने इस पदानुक्रम को लागू किया और शूद्रों को जातिगत स्थिति के कारण कई निम्न कार्य करने पड़ते थे। वे मन्दिर के अति पवित्र स्थान गर्भगृह में प्रवेश नही कर सकते थे। यह विशेषधिकार केवल ब्राहमणों को था। ग्रामीण इलाकों में, अभी भी निम्न जातियों के प्रति विद्वेष विधमान है। हम प्रायः जातीय हिंसा की खबर सुनते हैं जबकि निम्न जाति के लोगों को मुख्य पर शादी–जूलुस या शव–यात्रा के लिये ऊँची जातियों द्वारा पाबन्दी लगाई होती है।

काम धन्धों के चुनाव पर पाबन्दी

जन्म से जातिगत सदस्यता प्राप्त होती है और प्रत्येक जाति के काम धन्धे परम्परागत रूप से निर्धरित होते हैं। किसी व्यक्ति की निपुणता और सम्मान का ध्यान रखे बिना जाति बंधन के नियम के चलते उसे जबरन अपनी जाति का ही पेशा अपनाना होता था। इसी प्रकार किसी खास जाति के खास तरह का पेशा खुला होता था। इस प्रकार एक जाति के लिये एक पेशा निश्चित था और वह पेशा केवल उसी जाति के लोग कर सकते थे। उदाहरण के तौर पर ब्राहमण कुल में जन्म होने के कारण एक ब्राहमण ही एक पुजारी बन सकता था। शिक्षा भी जाति के आधार पर दी जाती थी। नौजवान सदस्यों रखा जाता था ताकि जाति के लिये निर्धारित पेशे में निपुणता हासिल कर सके। उस समय कोई एक समान और सार्वभौमिक शिक्षा नही थी। फिर भी समाजशास्त्री बताते हैं कि काम धन्धों पर इतने प्रतिबंध के बावजूद कुछ ऐसे भी व्यवसाय थे जो सबके लिये खुले थे जैसे वस्त्र बुनना, खेती बाड़ी और सैनिक सेवा।

आधुनिक समय से पूर्व विभिन्न जातियों में आर्थिक सम्बन्ध जजमानी प्रथा के रूप में थे। प्रत्येक नौकरी पेशा जाति को अपने मालिकों के लिये कुछ खास कार्य करने पड़ते थे। प्रायः उन्हें पारिश्रमिक वस्तुओं के रूप में और वार्षिक आधार पर दिया जाता था। सेवा करने वाली जातियों और उच्च जातियों में संरक्षक और संरक्षित का संबंध होता था। आधुनिक समय में यह संबंध परिवर्तित हो चुका है।

सगोत्र विवाह

सगोत्र विवाह का अर्थ वह विवाह परम्परा है जिसमें समूह के सदस्यों का विवाह समूह के सदस्यों से होता है। सगोत्र विवाह जाति प्रथा की महत्वपूर्ण विशेषता है। कई जातियों में उप जाति स्तरों पर सगोत्र विवाह नहीं होता है। उदाहरण के लिए अय्यर और अयंगर में परस्पर विवाह नहीं होता यद्यपि दोनों ही तमिल ब्राहमण हैं।

इस नियम के अपवाद भी हैं। ये अपवाद उच्च जाति में तथा निम्न जाति में विवाह से संबंधित हैं। जब एक उच्च जाति का पुरूष निम्न जाति की महिला से विवाह करता है तो इसे निम्न जाति में तथा जब एक निम्न जाति का पुरूष उच्च जाति की महिला से विवाह करता है तो इसे उच्च जाति में विवाह कहा जाता है। निम्न जाति में विवाह की अनुमति दी जाती है जबकि उच्च जाति में विवाह पूरी तरह निषेध है। यदि किसी निम्न जाति की लड़की को उच्च जाति के पुरूष और परिवार द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है तो यह उनके लिए बड़ी शान की बात है। इस प्रकार की परम्परा वाले विवाह का एक उदाहरण नम्बूदरी पुरूष का नय्यर महिला के बीच का विवाह है।

अन्य धर्मों में जाति

विश्व के मुख्य धर्मों में जाति केवल हिन्दू धर्म में ही मौजूद हैं। लेकिन भारत में स्थित सभी धर्मों के सभी धर्मानुयायी जाति विभाजन में बँटे हुए लगते हैं। मुस्लिम, इसाई, बौद्ध

तथा सिक्ख विभिन्न प्रकार से शामिल करने और वशांनुगत धर्म का पालन करते नजर आते हैं। इस्लाम और इसाई धर्म मूल रूप से अपने सदस्यों की समानता में विश्वास करते हैं। फिर भी, जाति संबंधी परंपरात दर्शाती है कि कुछ संदर्भों में सामाजिक वातावरण जिसमें धर्म अपनाया जाता है धर्म से अधिक उसे प्रभावित करता है। यही स्थिति सिक्ख धर्म और बौद्ध धर्म में भी लागू होती हैं।

जाति संबंधी अन्तर हिन्दु धर्म के अतिरिक्त अन्य धर्मों में भी देखा जा सकता है। सिक्ख धर्म में जाट सिक्ख तथा असली सिक्ख समूह पाए जाते हैं। वे परस्वर विवाह नहीं करते। इस्लाम में चार समूह पाए जिनकी तुलना जातियों से की जा सकती है : सैयद, शेख, पठान तथा मुगल। सैयद दावा करते हैं कि वे पैगम्बर मुहम्मद के वंशज हैं, जबकि शेख दावा करते हैं कि वे पैगम्बर मुहम्मद कुल के वंशज हैं। पठानों और मुगलों को हिन्दुओं में क्षत्रिय की तरह योद्धा माना जाता है। इस्लाम में अन्य समूह व्यवसायों पर आधारित है जो बुनाई, कसाई, मिस्त्री आदि होते हैं। इन समूहों को सैयद, शेख, पठान और मुगलों की सामाजिक माना जाता है। इनमें से अधिकतर समूह अन्तर्जातीय है। इन सदस्यों के बीच सिमित सामाजिक संबंध हैं। फिर भी, किसी भी समूह से यदि कोई धार्मिक ज्ञान में सक्षम है तो वह पादरी या मोलवी बन सकता है।

ईसाई धर्म भी एक समतावादी धर्म है तथा इसमें इतिहास के विभिन्न कालों में सभी जातियों से लोगों को धर्मांतरण के लिए प्रेरित किया गया है। इनमें से अधिकतर जातियों ने धर्मांतरण के बाद भी अपनी जाति की पहचान बनाए रखी है जिससे उनका सामाजिक व्यवहार प्रभावित होता है। फिर भी इस्लाम और इसाई धर्म में अपवित्रीकरण और शुद्धता की कोई संकल्पना नहीं है जो हिन्दुत्व का केन्द्र बिन्दु है। इस प्रकार ये धर्म हिन्दुत्व की तुलना में जातिवाद से बहुत कम प्रभावित हैं।

बोध प्रश्न II

टिप्पणी : क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।
ख) इस इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1) भारत में जाति प्रथा की क्या विशेषताएँ है?

.....

.....

.....

.....

.....

3.5 जाति और सामाजिक परिवर्तन

यद्यपि जाति प्रथा को स्थिर प्रथा माना जाता है तो भी आधुनिकीकरण के कारण इसमें परिवर्तन हुए हैं जिनकी चर्चा निम्नलिखित हैः–

जाति और औद्योगिकीकरण

औद्योगिकीकरण की प्रक्रिया ने कई तरीकों से पारंपरिक भारतीय समाज को प्रभावित किया है। इसने जाति प्रथा को विशेष रूप से प्रभावित किया है। सर्वाधिक महत्वपूर्ण क्रमिक परिवर्तन जाति श्रेणियों से वर्ग श्रेणियों में हुआ है। यह परिवर्तन विशेषतः शहरी क्षेत्रों में हुआ है। भारतीय समाज में वस्तुओं के विनिमय की जजमानी प्रथा थी। जजमानी प्रथा संरक्षक संरक्षित के बीच थी जिसमें निम्न जाति वस्तुओं के रूप में वार्षिक भुगतान के बदले उच्च जाति के सदस्यों को अपनी सेवाएँ प्रदान करते थे।

औद्योगिक विकास से ऊर्जा के प्राकृतिक स्रोतों के उपयोग और बाज़ारों के आकार में वृद्धि हो गई है। उद्योगों में वृद्धि होने से श्रमिकों के रोज़गार में वृद्धि हुई जो मज़दूरी के बदले श्रम करते थे। वस्तुओं के उत्पादन स्थल उत्पादकों के आवासों से उद्योगों के विस्तार से श्रमिकों का आंदोलन आरंभिक और घरेलू क्षेत्र से बढ़ कर दूसरे और औपचारिक क्षेत्रों में बढ़ गया।

औद्योगिक विकास ने विभिन्न जातियों में सामाजिक और आर्थिक संबंधों में परिवर्तन ला दिया है। सेवाएँ करने वाली जातियों को प्रायः ऐसे कार्य मिलने लगे जिनसे उनकी हैसियत तथा आमदनी में वृद्धि होनी लगी। उद्योगों ने विभिन्न जातियों के व्यक्तियों को भी कार्य स्थल पर एक साथ इकट्ठा कर दिया तथा विभिन्न जातियों के बीच यहां पर अंतर/दूरियाँ नहीं रखी जाती थी। फिर उद्योगों में श्रमिकों का चयन और उनकी पदोन्नति योग्यता एवं मेहनत के आधार पर की जाती थी न कि जाति जैसे आरोपित अन्य तथ्यों के आधार पर। धीरे–धीरे उद्योगों में रोज़गार ने जाति, शिक्षा और व्यवसायों में संबंधों को धीरे–धीरे बदल दिया। इन परिवर्तनों के बावजूद जाति नेटवर्क ने उद्योगों तथा आधुनिक संगठनों में रोज़गार को प्रभावित करता रहा। इसके परिणाम स्वरूप आधुनिक आर्थिक व्यवस्था भी जाति प्रथा के प्रभावों से पूरी तरह मुक्त नहीं हुई है।

जाति प्रथा और शहरीकरण

औद्योगिककरण से एकदम संबंधित शहरीकरण भी एक सामाजिक प्रक्रिया है जो ग्रामीण क्षेत्रों से शहरी क्षेत्रों में स्थानांतरित होने का आंदोलन है। शहरी जीवन ने गुमनामी तथा व्यक्तियों के बीच औपचारिक संबंधों को बढ़ावा दिया। शहरों में प्रमुख व्यवसाय दूसरे और तीसरे क्षेत्रों से संबंधित हैं। इन क्षेत्रों में रोज़गार के अवसर जाति पर आधारित होकर व्यक्तियों की दक्षताओं, परिश्रम, शिक्षा और प्रशिक्षण पर निर्भर करते हैं।

शहरी क्षेत्रों में सामाजिक जीवन भी ग्रामीण क्षेत्रों के सामाजिक जीवन से भिन्न होता है। धार्मिक शुद्धता तथा सामाजिक दूरी यहाँ नहीं रखी जा सकती। उदाहरण के लिए बस में अपने साथ बैठने वाले व्यक्ति से उसकी जाति नहीं पूछी जा सकती। इसी प्रकार कोई भी होटल के रसोइये की जाति नहीं जानता और इसलिए पाक कला से संबंधित नियमों का पालन नहीं किया जा सकता। व्यक्ति का घर उसके चुकाए जाने वाले किराये पर निर्भर करता है न कि उसकी जाति पर। इन सभी तथ्यों ने शहरी क्षेत्रों में जाति व्यवस्था को कमजोर कर दिया है।

जाति प्रथा और राजनीतिक प्रणाली

भारतीय संविधान लचीले मूल्यों पर आधारित है जैसे समानता, स्वतंत्रता और भाई–चारा, धर्म निरपेक्षता व नागरिकता। राजनीतिक भागीदारी के लिए आरंभिक इकाई व्यक्ति है। जाति व्यवस्था पूर्णतः इन मूल्यों के विपरीत मूल्यों पर आधारित है। असमानता, विभाजन तथा व्यवसायों के चयन में प्रतिबंध जाति व्यवस्था के मूल्य हैं। भारतीय संविधान प्रत्येक व्यक्ति को वोट देने, चुनावों में भाग लेने का अधिकार प्रदान करता है। समानता तथा भेदभाव से रक्षा से संबंधित विषयों के कुछ महत्वपूर्ण अनुच्छेद है (14, 15, 16 व 17) समाज के सभी कार्य समाज के सभी सदस्यों के लिए उपलब्ध है। शर्त यह है कि समानता के आधार पर वे अन्य भागीदारों से अधिक योग्य और समर्थ हों।

इन तथ्यों का जाति प्रथा और पारंपरिक नियमों एवं नेताओं पर काफी प्रभाव पड़ा। स्वतंत्रता के कुछ साल बाद तक संभ्रात व्यक्ति राजनीति को प्रभावित करने वाली उच्च जाति के सदस्य होते थे लेकिन 1980 के दशक में पिछड़ी जाति एवं दलित लोगों ने राजनीति के क्षेत्र में अपनी उपस्थिति का अहसास करवाया है। लोकतंत्र सरकार का प्रतिनिधित्व लोकतांत्रिक स्वरूप है और इसलिए इन समूहों की अधिकार संरचना में इन

समूहों की वृद्धि से भारतीय समाज अधिक शक्तिशाली होगा और लोकतंत्र जाति व्यवस्था के पारंपरिक स्वरूप को कमजोर भी बनाएगा।

जाति प्रथा और सामाजिक आंदोलन

जाति प्रथा के शोषण को हटाने के लिए राजा राम मोहन राय, ज्योतिबा फूले, डा. अम्बेडकर, पेरियार, नारायण गुरू तथा अन्य कई नेताओं ने अनेक सामाजिक आंदोलन चलाएँ हैं।

सुधारात्मक और क्रांतिकारी आंदोलन चलाने वालों में महात्मा गांधी, राजा राम मोहनराय और नारायण गुरू प्रथम श्रेणी में आते हैं। इनका यह विश्वास था कि जाति व्यवस्था को धीरे धीरे और व्यवस्था में ही बदला जा सकता है। सुधारवादियों का सुझाव था कि जाति व्यवस्था में परिवर्तन के लिए उच्च जाति के सदस्यों के हृदय में परिवर्तन और निम्न जाति वालों को शैक्षिक सुविधाएं जुटाना आवश्यक है। दूसरी तरफ अम्बेडकर, फूले और पेरियर जैसे क्रांतिवादी विश्वास करते थे कि जाति व्यवस्था को पूरी तरह समाप्त करना होगा और किसी भी दशा में इसके जारी रहने से शोषण और उत्पीड़न जारी रहेगा। उनका विचार था कि जाति व्यवस्था प्रचलन के विरूद्ध संघर्ष करने के लिए सामाजिक आंदोलन, निषेध और कानून का सहारा लेना होगा। इन दो प्रकार के आंदोलनों ने अनेक स्वयं सेवी संगठनों की विचार धारा को प्रभावित किया और आज भी जाति व्यवस्था संबंधी समस्याओं से निपटने के लिए निर्णय लेना पड़ता है कि इनसे कैसे निपटा जाए।

जाति और विचार धारा

युक्ति संगत और तर्क संगत आधारित प्रबद्ध पश्चिमी विचार औपनिवेशिक काल में भारत पहुँचे। इन विचार धाराओं के फलस्वरूप उदारवाद, समाजवाद, मार्क्सवाद और राष्ट्रवाद काफी प्रसिद्ध हुए थे और उपनिवेशशिक काल में अंग्रेजों ने शिक्षा व्यवस्था का प्रबंध किया। अनेक उच्च जाति के बुद्धिमान लोग इस शिक्षा व्यवस्था में शिक्षित हुए तथा इन मूल्यों को आत्मसात किया। उनमें से अधिकतर विद्वानों ने अनेक तरीकों से भारतीय समाज को आधुनिक बनाने का प्रयत्न किया।

जाति और आधुनिक शिक्षा

पारंपरिक शिक्षा का आधार आरोपन था जबकि आधुनिक शिक्षा उपलब्धि मूलक है। विभिन्न जातियाँ अपने छोटे सदस्यों को अपनी जाति के शिल्पों में दक्ष बनाने के लिए उन्हें आरंभिक प्रशिक्षण प्रदान करती थी।

दूसरी तरफ आधुनिक शिक्षा सार्वभौमिक और वैज्ञानिक शिक्षा प्रदान करती है। ताकि उन्हें विभिन्न व्यावसायिक अवसर उपलब्ध हो सकें।

आधुनिक शिक्षा प्रणाली छात्रों के मन में समानता, भाईचारा, स्वतंत्रता और सामाजिक न्याय के मूल्यों को बैठाती है। फिर आधुनिक विद्यालयों में छात्र एक साथ अध्ययन के लिए आते हैं तथा परस्पर मुक्त भाव से संपर्क करते है। शिक्षा प्रणाली द्वारा प्रदत मूल्यों और विभिन्न जातियों के छात्रों द्वारा परस्पर संपर्क के माध्यम से उत्पन्न उनके अनुभवों ने छात्रों के मन में जाति मूल्यों की पकड़ को ढीला कर दिया है।

आधुनिक समय में शिक्षा सबके लिए खुली लेकिन बहुत खर्चीली हो गई है। उच्च गुणवत्ता वाली शिक्षा सबके लिए विशेषता समाज के अ.जा./अ.ज.जा सहित निर्धन वर्गों के लिए सुलभ नहीं है चूंकि ये शिक्षा से वंचित हैं अतः शक्ति संपन्न नहीं हैं। श्रेष्ठ शिक्षा सबके लिए उपलब्ध कराने की आवश्यकता है ताकि ये वर्ग भी शक्ति संपन्न हो सकें।

अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति बच्चों के लिए शिक्षण संख्याओं एवं पाठ्यक्रमों में आरक्षण है। इन वर्गों के लिए राज्य सरकार एवं केन्द्र सरकार द्वारा उनके शैक्षिक सशक्तिकरण के लिए विशेष सशक्तिकरण के लिए विशेष अनुदान एवं छात्रवृत्ति प्रदान की जाती है। इसके अलावा विशेष स्कूल, हॉस्टल इत्यादि की प्रदान किया जाता है। इस

प्रकार अब इस क्षेत्र में बड़ा अभाव एवं भेदभाव नहीं मिल सकता। विदेश शिक्षा के लिए अवसर की अब उनके लिए खुले हैं जो कि तो इसका लाभ ले सकते हैं। अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के अधिकारों, कल्याणों एवं भलाई को सुनिश्चित करने के लिए केन्द्र सरकार ने एक स्वतंत्र आयोग का गठन किया है।

3.6 भारतीय समाज पर जाति प्रथा का प्रभाव

जाति प्रथा कमजोर तो हो गई है लेकिन निश्चित रूप से यह समाप्त नहीं हुई है। इसका रूपांतरण हो गया है और आधुनिक समाज में इसमें अपने लिए विभिन्न कार्य अपना लिए है। अब हम देखते है कि कैसे जाति प्रथा में परिवर्तन आया और इसने कैसे आधुनिक समाज के अनुरूप में स्वयं को ढाल लिया।

वैयक्तिक जीवन का विभागीकरण

व्यक्ति के जीवन के कुछ क्षेत्रों में जाति प्रथा का प्रभाव कम हो गया है। खाना खाने की आदतों और पारस्परिक संपर्क के क्षेत्रों में जहाँ जाति प्रथा का अत्यधिक प्रभाव था अब यह मामूली है। लेकिन कुछ क्षेत्रों जैसे विवाह के लिए वर या वधु के चयन व सामाजिक नेटवर्क जैसे क्षेत्रों मे अभी भी इसका काफी प्रभाव है। यह मुख्यतः शहरी क्षेत्रों में तो साथ है लेकिन ग्रामीण क्षेत्रों में अभी भी स्थिति भिन्न है। जाति प्रथा के अतिकतर पारंपरिक पहलू आज भी प्रचलित है। जाति प्रथा द्वारा सामाजिक जीवन को प्रभावित करने के तरीके विभिन्न क्षेत्रों में अलग अलग होते हैं।

धार्मिक क्षेत्र में जाति प्रथा में कमी

आजकल लोगों द्वारा पवित्रता और अपवित्रता के विचारों को अधिक महत्व नहीं दिया जाता। अब अधिकतर लोग यह विश्वास नहीं करते कि निम्न जाति के व्यक्ति के साथ मिलने या उनके साथ खाने से वे अपवित्र हो जाएंगे। अतः कहा जा सकता है कि जाति प्रथा के लिए धार्मिक औचित्य यदि पूरी तरह समाप्त नहीं हुआ है तो कम अवश्य हो गया है।

सामाजिक संजाल (नेटवर्क) के रूप में जाति

संसाधनों की प्राप्ति के लिए जातियाँ नेटवर्क बनाने का आधार बन गई हैं। नौकरी प्राप्त करने के लिए पदोन्नति प्राप्त करने के लिए, वस्तुओं और सेवाओं की प्राप्ति के लिए, व्यावसायिक नेटवर्क का विकास करने के लिए तथा सरकार आदि के निर्णय को प्रभावित करने के लिए जातियों की एसोसिएशनों का खुल प्रयोग किया जाता है। अपने हितों को पूरा करने के लिए लोग जातियों के आधार पर सक्रिय होने लगते हैं। समाजशास्त्रियों ने बताया है कि किसानों की मांगों से संबंधित आंदोलन जिनका प्रत्यक्षतः जाति से कोई संबंध नजर नहीं आता था, जाति नेटवर्क पर आधारित थे।

पहले की जाति परिषदें जिन्हें लोगों का व्यवहार नियंत्रित करने के लिए न्यायायिक अधिकार प्राप्त थे और उन्हें सरकार तथा जनता से मान्यता प्राप्त थी। लेकिन अब ये परिषदें विवादों को निपटाने के लिए अनौपचारिक अधिकार और दबावों का प्रयोग करती हैं।

जाति चेतना और समुदाय चेतना

आज भी व्यक्ति की पहचान करने और बनाए रखने के लिए जाति आधार है। बृहत समुदाय के साथ व्यक्ति की पहचान के लिए व्यक्ति की जाति की पहचान आड़े आती है। जाति आधारित पहचान लोगों की एकता पर विपरीत प्रभाव डालती है और बहुत बार सामूहिक निर्णय लेने से लोगों को रोकती है। फिर सामुदायिक विकास कार्यक्रम के प्रतिफल वितरण पर भी विपरीत प्रभाव डालने में जाति की भूमिका होती है। प्रमुख

जातियों को विभिन्न विकास कार्यक्रमों का अधिक लाभ दूसरी जातियों की कीमत पर होता है। सकारात्मक उद्देश्य वाले अनेक सामाजिक आंदोलन भी इससे प्रभावित हो चुके हैं। सामुदायिक संघर्ष को शांति पूर्वक ढंग से सुलझाने के उद्देश्य चलाया गया भूदान आंदोलन संसाधनों वितरण के कारण उच्च जातियों में हुए संघर्ष के कारण असफल हो गया।

इन अनुभवों से अनेक लोगों ने निष्कर्ष निकाला है कि भारतीय गाँवों में सामान्य सामुदायिक चेतना नहीं है यहाँ जाति चेतना और जाति पहचान का अस्तित्त्व है। समुदाय संकल्पना केवल भ्रम है। एक सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में आपको ऐसे तरीके निकालने होंगे कि आपके द्वारा लागू विकास कार्यक्रमों का लाभ लक्ष्य जनता तक अवश्य पहुँचे।

जाति चेतना से हिंसा की उत्पत्ति

जाति आधारित सामाजिक संरचनाएँ संघर्ष मूलक होती हैं। यह तीव्र जाति चेतना और परस्पर जाति सदस्यों की मजबूत पहचान का स्वभाविक परिणाम होता है। अधिकतर हिसाँएँ स्थानीय होती हैं और तुच्छ घटनाओं के कारण होती हैं। निम्न जाति के सदस्य को विवाह प्रक्रिया में घोड़े पर बैठने की अनुमति नहीं होती, उन्हें वोट डालने का भी अधिकार नहीं होता, निम्न जातियों के सदस्यों को गांव में प्रवेश या कुछ मार्गों पर चलने की भी अनुमति नहीं होती। उन्हें मंदिर के आयोजनों में भी शामिल नहीं होने दिया जाता। इस जाति की लड़की को अन्य जातियों के पुरूषों द्वारा पीड़ित किया जाता है। भूतकाल में ये अन्यायी क्रियाएँ निम्न जातियों द्वारा चुपचाप सहन की जाती थी। अब वर्ग चेतना के कारण निम्न जातियों में इन दुर्व्यवहारों का विरोध किया जाता है जिससे हिंसा होती है।

इन हिंसक घटनाओं की जड़ों में संसाधनों का असमान वितरण; उच्च जातियों की निम्न जातियों को उनके स्थान पर ही बनाए रखने की आवश्यकता; निम्न जातियों में अपनी निम्न हैसियत के बारे में बढ़ती चेतना तथा स्थिति का प्रतिकार करना तथा राजतंत्र का इन भावनाओं के प्रति उदासीनता जैसे क्षेत्रों में हैं।

जाति संरचनात्मक हिंसा की तरफ ले जाती है :

संरचनात्मक हिंसा का अर्थ वह हिंसा है जो दूसरे के साथ प्रत्यक्ष रूप से नहीं की जाती अपितु नियमों और कानूनों को ऐसे बनाया जाता है कि वे व्यक्ति के सम्मान को चोट पहुँचाते हैं तथा मानसिक दुख का कारण बन जाते हैं। अस्पृश्यता संरचनात्मक हिंसा का सर्वाधिक विसाक्त रूप हैं। यह उस व्यक्ति के सम्मान को चोट पहुंचाता है। जिस पर यह लागू किया जाता है। इससे उस व्यक्ति का दैनिक जीवन बहुत दूरूह हो जाता है। निम्न जाति के सदस्यों को कुछ सामान्य सुविधाओं में प्रवेश की अनुमति नहीं होती जैसे विद्यालय और मंदिर तथा कुछ सामान्य संसाधनों के प्रयोग की उन्हें अनुमति नहीं होती। निम्न जातियों की महिलाओं को गाँव के कुँओं से जल लेने की अनुमति नहीं होती तथा जल लेने के लिए उन्हें काफी दूर जाना पड़ता है। कुछ कार्य जैसे सरकार की मध्याहन भोजन योजना में रसोइये का कार्य दलितों को नहीं दिया जाता क्योंकि विश्वास किया जाता है कि वे भोजन को प्रदूषित कर देते हैं। जैसा कि पहले वर्णन किया जा चुका है जाति का धार्मिक पक्ष तो कम हो रहा है लेकिन कुछ लोग अस्पृश्यता को यह कहते हुए न्याय संगत ठहराते हैं कि निम्न जातियाँ शारीरिक रूप से स्वच्छ नहीं होती।

जाति के कारण आधुनिक संगठनों में समस्याएँ

जाति प्रतिबद्धताएँ/निष्ठाएँ आधुनिक संगठनों में समस्या का कारण बनती है बहुत बार लोगों को योग्यता के स्थान पर जाति के आधार पर चुने जाते हैं। इससे संगठन के कार्य निष्पादन तथा उत्पादकता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। जाति के कारण संगठनों में संगठनात्मक भावना पैदा करने में रूकावट आती है। जाति के आधार पर विभाजित ग्रामीण समुदाय की भांति आधुनिक संगठन भी जाति के आधार पर विभाजित होते हैं।

वर्तमान में वोट बैंक के लिए समुदाय समेकन है एवं कुछ विशेष समूह अपनी स्वयं के राजनीतिक दलों के साथ आए हैं। जाति संगठन चुनाव के दौरान जीत के निर्धारण में बहुत महत्वपूर्ण प्रभाव रखता है।

कानूनों और नियमों को सामान रूप से लागू करने में रूकावट के रूप में जाति

आधुनिक नियमों और कानूनों को न्याय संगत ढंग से इस प्रकार बनाया जाता है कि सामाजिक पृष्ठभूमि का ध्यान किए बगैर अनुमति के अनुसार अपवादों की छोड़ कर सभी नागरिक पर समान रूप से लागू किया जाता है। कानूनों का ऐसा सार्वभौमिक कार्यान्वयन आधुनिक लोकतंत्र की बहुत बड़ी आवश्यकता है। लेकिन जाति प्रथा के बारे में विचार सार्वभौमिक है।

उच्च जाति और निम्न जाति के विचारों में अन्तर है कि किस प्रकार जाति प्रथा उनको प्रभावित करती है। उच्च जाति की विचार धारा के अनुसार विभिन्न क्षेत्रों में आरक्षण और निम्न जातियों की वृद्धि ने उनको हानि पहुँचाई है। दूसरी तरफ निम्न जातियों का विचार है कि उच्च जातियों ने समाज में महत्वपूर्ण स्थितियाँ कब्जा किया हुआ है और उनके साथ अत्याचार हुआ है। उच्च और निम्न जातियों के विचारों में निरंतर संघर्ष रहा है। राजनीतिज्ञ इसका प्रयोग अपने स्वार्थों के लिए करते हैं। फिर भी एक प्रत्येक जाति श्रेणी में एक प्रभावशाली वर्ग का उदय हो गया है जो दूसरों की कीमत पर उपलब्ध अवसरों का लाभ उठाता है।

समाज शास्त्रियों ने भारतीय समाज पर जाति प्रथा के सकारात्मक प्रभावों की भी पहचान की है। इसने भारत में बहुलता को तो बढ़ावा दिया ही साथ ही समाज के जुड़ने के लिए सामाजिक संरचना भी प्रदान की है। जातियों में विभिन्न मूल्य प्रथा, विभिन्न जीवन शैलियाँ, विभिन्न व्यवसाय और फलस्वरूप विभिन्न हित होते हैं। और इससे राजनीतिक और सांस्कृतिक बाहुलता पैदा हुई है। विभिन्न मूल्य व्यवस्थाएँ विभिन्न विचारों को बढ़ावा देती है जो विचारों की विविधता को बढ़ावा दे सकती है। राजनीतिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में कोई एक समूह आधिपत्य नहीं जमा सकता। प्रत्येक समूह को दूसरे समूहों के साथ समझौता करना पड़ता है ताकि उनके उद्देश्य पूरे हो सके। राजनीतिक वैज्ञानिकों ने कहा है कि यह स्थिति भारतीय लोकतंत्र को गतिशील और जीवंत बनाने में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करती है।

यह भी दावा किया जाता है कि पारंपरिक रूप में जाति प्रथा समाज में स्थिरता प्रदान करती है। राजे और दर बार आए और चले गए लेकिन ग्रामीण समुदायों में कोई प्रमुख परिवर्तन नहीं हुए। यह बहस का विषय है कि परिवर्तन न होना सकारात्मक पहलू है या नकारात्मक। किसी भी मामले में इतिहासकारों में विवाद है कि शताब्दियों के बाद भी भारतीय समाज में कोई प्रमुख परिवर्तन नहीं हुआ है। एक अन्य लाभ यह बताया गया है कि जाति प्रथा मनुष्यों को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करती है क्योंकि उसका व्यवसाय निश्चित होता है और संकट के समय उसके साथी उसकी सहायता करेंगे। ये लाभ केवल पारंपरिक समाज में ही पाए जाते है न कि आधुनिक समाज में।

बोध प्रश्न III

टिप्पणी : क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।
ख) इस इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1) आधुनिक काल में जाति प्रथा को प्रभावित करने वाले दो तथ्यों के नाम बताइए।

.....

.....

.....

3.7 सारांश

इस इकाई में हमने सामाजिक स्तरीकरण से संबंधित विभिन्न पक्षों का अध्ययन किया है जो समाज का वर्गों में विभाजन करता है। यह वंशानुगत है तथा जो एक या अनेक मानदंडों पर आधारित है। आधुनिक समाजों में स्तरीकरण मुख्यतः तीन आयामों, धन, हैसियत तथा अधिकार पर आधारित है। व्यक्ति के पास स्थित धन संपत्ति उसके संबंधित वर्ग का निर्धारित करती है, समाज में उसकी स्थिति को दिया गया सम्मान उसकी हैसियत निर्धारित करता है तथा संगठन में उसकी स्थिति का निर्धारित उसके पास स्थित अधिकारों से होता है।

भारत में स्तरीकरण के दो आधार वर्ग और जाति है। जाति प्रथा में परिवर्तन तथा भारतीय समाज पर उसके प्रभाव की चर्चा की गई है। सामाजिक कार्यकर्ता का अपना व्यक्तित्त्व भी इन विचारों से प्रभावित हो सकता है तथा उसकी कार्य प्रणाली समाज में उसकी स्थिति से प्रभावित होती है। सामाजिक कार्यकर्ता के पूर्वाग्रह उसके कार्य में आड़े नहीं आने चाहिए। फिर उसे अपने सभी कार्यक्रमों में जनता की जाति और वर्ग तथ्यों का तथा उन पर उनके प्रभावों का भी ध्यान रखना चाहिए।

3.8 शब्दावली

सामाजिक भूमिका : समाज में मिली विशेष स्थिति से जुड़ा हुआ व्यक्ति का आशा प्रद सुसंगठित व्यवहार।

प्रस्थिति : समाज में प्राप्त एक सामाजिक स्थिति।

पूंजीवाद : उत्पादन के संसाधनों का निजीकरण जिसे मार्क्सवादी पूंजी द्वारा श्रम का शोषण मानते हैं।

सामाजिक संजाल : लोगों का एक समूह जिनके एक जैसे उद्देश्य और आशय हैं एक दूसरे के सहयोग या समर्थन के लिए सम्पर्क करते हैं या अनौपचारिक संबंध बनाए रखते हैं।

भूदान आंदोलन : इसकी शुरुआत विनोवा भावे ने की थी। इसका उद्देश्य बड़े जमींदारों को फालतू जमीन भूमिहीनों को देने के लिए राजी कराना था। इस आन्दोलन का उद्देश्य शान्तिपूर्वक भूमिहीनता की समस्या को समाप्त करना था।

3.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

गुप्ता दिपांकर (1993), सोशल स्ट्रेटीफिकेशन, ऑक्सफोर्ड।

यूनिवर्सिटी प्रैस, न.दि., स्टेर्न, रोबर्ट (1998), चेंजिग इंडिया।

कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, न.दि., हरलम्बोस, माइकेल (1989), सोशलायी, मैक्ग्रा हील, सिंगापोर।

कोलेंडा पौलिन (1997), कास्ट इन कोंटम्परेरी इंडिया, बियोंड ऑर्गेनिक सोलिटेरिटी, रावत पब्लिकेसंश, जयपुर।

घुरये (1986), कास्ट एंड रेस इन मॉडर्न इंडिया, पॉपुलर प्रकाशन, बंबई।

3.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न I

1) वेबर के अनुसार सामाजिक स्तरीकरण के तीन आयाम हैं धन, हैसियत और अधिकार। व्यक्ति के पास स्थित धन उसका वर्ग तथा उसके जीवन अवसर निर्धारित करता है। व्यक्ति की स्थिति उसकी जीवन शैली पर निर्भर करती है तथा इससे समाज द्वारा उसे दिया जाने वाला सम्मान निर्धारित होगा। अधिकार दूसरे लोगों के व्यवहार को नियंत्रित करने की योग्यता पर निर्भर करता है और आधुनिक समाजों में यह संगठन में उसकी स्थिति से ज्ञात होता है।

बोध प्रश्न II

1) जाति प्रथा की विशेषताएँ विभिन्न समूहों, आरोपित स्थिति, सगोत्र विवाह, निर्धारित व्यवसाय, सामाजिक संपर्क पर प्रतिबंध, सिविल और धार्मिक अयोग्यताएँ, विभिन्न वर्गों के विशेषधिकार तथा समाज का वर्गों में विभाजन के बीच वंशानुगत संबंध हैं।

बोध प्रश्न III

1) जाति प्रथा को प्रभावित करने वाले दो तथ्य है औद्योगिकीकरण और सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार का आरंभ होना।

इकाई 4 सामाजिक संस्था के रूप में राज्य : इसकी भूमिका और अन्य संस्थाओं पर प्रभाव

रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 राज्य

4.3 संविधान और कानून

4.4 विधानपालिका, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका

4.5 नागरिकता, अधिकार और कर्त्तव्य

4.6 लोकतंत्र, कुलीन वर्ग सिद्धांत और अधिकार

4.7 कल्याणकारी राज्य : स्वतंत्रता, समानता और न्याय

4.8 राष्ट्रवाद : धर्म, जाति और वर्ग

4.9 नागरिक समाज, सामुदायिक संगठन, सामाजिक सम्पत्ति

4.10 स्थानीय शासन और लोकमत

4.11 सारांश

4.12 शब्दावली

4.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें

4.14 बोध प्रश्नों के उत्तर

4.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको एक संस्था के रूप में राज्य की संकल्पना तथा समाज में अन्य संस्थाओं पर उसके प्रभाव के बारे में अवगत कराना है।

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :

- आधुनिक समाज में राज्य की भूमिका और उसका महत्व समझ सकेंगे;
- सरकार के विभिन्न विभागों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे;
- संविधान और कानून का महत्व समझ सकेंगे; और
- नागरिक समाज, सामाजिक सम्पत्ति, विशिष्ट वर्ग और लोकमत की संकल्पनाओं का विश्लेषण कर सकेंगे।

4.1 प्रस्तावना

इस खंड में एक संस्था के रूप में राज्य तथा अन्य सामाजिक संस्थाओं पर इस के प्रभावों की चर्चा की गई है। इसमें राज्य और राजनीति से जुड़े कई अन्य संदर्भों के बारे में आरंभिक सूचना भी प्रदान की गई है।

आधुनिक राज्य संस्थाओं का एक मिश्रित समूह है जो सर्वोत्तम रूप से संघटित और निर्मित है। राज्य बनाने वाले लोगों को व्यक्ति नहीं अपितु नागरिक या मतदाता माना

जाता है। चूंकि कानूनों ने उन्हें समानता प्रदान की है अतः आदर्श रूप में कहा जाए तो सभी नागरिक (और यह हमारे संविधान में अच्छी तरह वर्णित है) अधिकारों और सुविधाओं के लिए एक समान माने जाते हैं। प्रशासन और शासन के लिए राज्य ने संस्थाओं का जाल बनाया हुआ है। सरकार व्यक्तियों और कार्मिकों से मिलकर बनी है जिन्होंने इन संस्थाओं को अपनाया हुआ है और जो अपने कार्यालय से अपने अधिकार प्राप्त करते हैं।

4.2 राज्य

एक निश्चित भू–भाग में एक स्वतंत्र राज्य सरकार के अंतर्गत राजनीतिक रूप से संगठित किसी समुदाय या समाज को राज्य कहा जा सकता है। राज्य एक विशेष संख्या है जो संपूर्ण समुदाय या समाज के एक वर्ग के हितों को पूरा करती है। राज्य सामाजिक विकास की एक निश्चित स्थिति पर प्रकट होता है और राज्य को समझने के लिए पहले सामान्य रूप से सामाजिक विकास को समझना आवश्यक है। सामाजिक विकास के सामान्य नियमों को समझे बिना राज्य और राजनीति को वास्तविक रूप से नहीं समझा जा सकता।

राज्य के मुख्य तत्त्व निम्नलिखित हैं :

जनसंख्या

सभी राज्यों की एक आबादी होती है। आबादी या जनसंख्या की कोई स्पष्ट या निश्चित संख्या आदर्श संख्या नहीं हो सकती। किसी समुदाय को राज्य के रूप में मान्यता देने की पात्रता के लिए आवश्यक व्यक्तियों की संख्या, नियंत्रित करने का कोई नियम या राजनीतिक परंपरा नहीं है। फिर भी अतीत में कुछ लेखकों ने मौटे तौर पर कुछ नियमों का वर्णन करने का प्रयत्न किया है जिसके अनुसार राज्य के अस्तित्त्व के लिए आवश्यक जनसंख्या के आकार को निश्चित करना चाहिए। जबकि कुछ ने तो न्यूनतम एवं अधिकतम सही संख्या निश्चित की है लेकिन ऐसे किसी नियम को अधिसूचित करना मनमाना तथ्य है।

राज्य क्षेत्र

क्षेत्र राज्य का एक और आवश्यक भौतिक घटक है। राज्य के प्रदेश में न केवल भूमि का निश्चित भाग आता है। अपितु इसकी सीमा में आने वाला जल और वायु क्षेत्र भी इसमें शामिल होता है। यह समुद्री तट से तीन मील तक बढ़ाया भी गया है इसे सीमांतर्गत जलक्षेत्र कहा जाता है। राज्य की सीमा प्राकृतिक या कृत्रिम हो सकती है अर्थात वे जल, पर्वत शृंखला, रेगिस्तान और जैसे पत्थर, खाइयाँ, दीवार आदि के रूप में हो सकती है। राज्य का वास निर्माण के लिए आवश्यक सीमा के विस्तार का कोई नियम या परंपरा नहीं है जो जनसंख्या के संबंध में जो है उससे अधिक की बात करती हो। अर्थात् राज्य के अस्तित्त्व के लिए जनसंख्या के आकार के अनुसार क्षेत्र का कोई संबंध नहीं है।

सरकार

जब तक लोग राजनीतिक रूप से संगठित हो कर कोई सिविल सरकार न बना ले तब तक जनसंख्या द्वारा व्यावहारिक रूप से प्रदेश का कोई भाग ग्रहण कर लेने से ही राज्य का निर्माण नहीं होता किसी राजनीतिक एजेंसी का होना आवश्यक है जो आज्ञा मानने वालों को आदेश देती हो, व्यवस्थित करती हो और उन्हें नियंत्रित करती हो। सरकार राज्य के अधिकारों का प्रयोग करती हो। सरकार का राज्य की अपेक्षा सीमित अर्थ होता है सरकार राज्य का एक अंग है। राज्य में शासन और शासित दोनो शामिल हैं। सरकार राज्य के राजनीतिक प्रशासन का एक स्थापित रूप है।

प्रभुसत्ता

इसका अर्थ है राज्य की सर्वोच्च एवं एक मात्र शक्ति जिसके द्वारा यह आदेश देता है और आदेशों को लागू करता है। इसी के आधार पर राज्य अन्य सभी एसोसिएशनों और संगठनों से भिन्न होता है। प्रभुसत्ता सरकार की नहीं राज्य की विशेषता होती है यद्यपि राज्य की तरफ से सरकार इसका प्रयोग कर सकती है। प्रभुसत्ता के बिना कोई राज्य नहीं हो सकता।

अंतर्राष्ट्रीय मान्यता

वास्तव में अंतर्राष्ट्रीय मान्यता राज्य की प्रभुसत्ता का परिणाम है न कि उसके अस्तित्त्व की शर्त। कई बार राज्यों को अन्य राज्यों के साथ हुई मान्य संधि के अनुसार परिभाषित किया जाता है। एक राज्य दूसरे राज्य को तब मान्यता प्रदान कर देता है जब उसकी सरकार संतुष्ट हो जाती है कि उस राज्य में राज्य की विशेषताएँ मौजूद हैं। राज्य द्वारा दूसरे राज्य को मान्यता प्रदान करना उसकी इच्छा पर निर्भर करता है।

मान्यता दो प्रकार की होती हैं : वास्तविक में और कानून के अनुसार।

वास्तविक मान्यता का अर्थ है कि राज्य को वास्तव में उसके अस्तित्त्व के रूप में तो मान्यता है लेकिन जरूरी नहीं कि कानून में उसे मान्यता प्राप्त हो। कानून के अनुसार मान्यता का अर्थ है कि राज्य न्यायपूर्ण ढंग से उत्पन्न न्याय संगत अस्तित्त्व वाला है।

राज्य की भूमिका और अन्य संस्थाओं पर उसका प्रभाव

राज्य को सभी सार्वजनिक वस्तुएँ जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य देखभाल पेयजल, तथा आधारभूत संरचनाएँ सभी ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में प्रदान करने का दायित्व होता है वह सामाजिक सुरक्षा आदि भी प्रदान करता है।

भारत में इससे कम में बनाई गई 10 वीं योजना के परिदृश्य में निवेश मूलक दृष्टिकोण से हटकर सुधारात्मक कार्यसूची बनाई गई ताकि प्रभावशाली व्यवस्था के माध्यम से सामाजिक उद्देश्य प्राप्त किए जा सके। यह केन्द्र सरकार और राज्य सरकारों, पंचायत राज संस्थाओं तथा गैर सरकारी संगठनों की शक्ति को सक्रिय करने पर निर्भर करती है ताकि सामाजिक विकास के स्पष्ट रूप से परिभाषित कार्यों को पूरा किया जा सके। निर्धन या लक्ष्य समूहों के लिए निर्धारित कार्यक्रम उन्हें प्रभावशाली ढंग से पहुँचाए जाए। सरकार की कार्यशैली में कई व्यापक परिवर्तन किए गए तथा इसकी एजेंसियों को अधिक दक्षता, पारदर्शिता और जिम्मेदारी से कार्य करने का सुझाव दिया गया।

4.3 संविधान और कानून

"कानून" मानव व्यवहार के मार्गदर्शन के लिए नियमों पर लिए लागू किया जाता हैं। लोगों का कोई समूह व्यवहार के इन नियमों के अभाव में अधिक समय तक शांति और अशांति से नहीं रह सकता। नियमों का लिखित होना आवश्यक नहीं है। ये परपंराओं और प्रथाओं के रूप में भी हो सकते हैं।

कानून (ला) शब्द लेग (पैर) ले लिया गया है जिसका अर्थ है स्थिर रहने वाली वस्तु। अतः इसका अर्थ है कि कानून सिद्धांततः स्थिर या एक समान या सामान्य रूप से पालन करना होता है। गैटेल ने कानूनों को मानव व्यवहार को नियंत्रित करने के लिए तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया है :

(i) नैतिक कानून (ii) सामाजिक कानून (iii) राजनीतिक कानून

प्रायः लोग कानून का पालन करते हैं (क) राज्य की शक्ति के कारण (ख) सामान्य कल्याण की वृद्धि के लिए, या (ग) कानून का पालन करने की आदत के कारण। फिर भी यदि हम उचित रूप से यह समझते हैं कि कोई विशेष कानून अन्यायपूर्ण है तो हमें उस कानून के विरूद्ध जनमत बनाना चाहिए। महात्मा गांधी ने दिखा दिया कि असहयोग और सिविल अवज्ञा की तकनीकों को तानाशाही राज्य के विरूद्ध कितने प्रभावशाली ढंग से प्रयोग किया जा सकता है।

बोध प्रश्न I

टिप्पणी : क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।
ख) इस इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1) पराज्य क्या है और इसके मूल तत्त्व क्या हैं?

.....

.....

.....

.....

4.4 विधानपालिका, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका

विधानपालिका

सरकार के तीन अंगों में से विधानपालिका सबसे अधिक महत्वपूर्ण अंग है। क्योंकि यह लोगों का प्रतिनिधित्व करती है और उनकी आशाओं और विश्वास को कानूनों के रूप में उतारने का प्रयास करती है। विधानपालिका राजनीतिक प्रणाली की सरकारी कानून बनाने वाली संस्था है।

भारतीय संविधान ने सरकार की संसदीय प्रणाली को अपनाया है। इसमें कार्यपालिका चुनाव के द्वारा गठित विधानपालिका के प्रति उत्तरदायी होती है।

विधानपालिका का मुख्य कार्य कानून के विवरणों की जाँच करना और कानूनों की स्वीकृति को प्राधिकृत न्यायसंगत बनाना, दोनों ही अर्थों में वैधानिक रूप प्रदान करना है।

संघीय राज्यवस्था होने के कारण हमारे संविधान में केन्द्रीय स्तर तथा राज्य स्तर भी विध ाान पालिकाएँ प्रदान की हैं।

कार्यपालिका

कार्यपालिका सरकार के संगठन एक भाग है। इसका कार्य विधानपालिका द्वारा निर्मित कानूनों को लागू करना तथा सामान्य प्रशासन का कार्य करना है।

आधुनिक राज्य को कल्याणकारी राज्य में परिवर्तित होने से कार्यपालिका के कार्य काफी व्यापक हो गए हैं।

विश्व के विभिन्न भागों में कार्यपालिका द्वारा किए जाने वाले कार्य निम्नलिखित हैं :

क) कानून और व्यवस्था बनाए रखना

ख) देश की सुरक्षा तथा कूटनीतिज्ञ संबंध बनाना

ग) कानूनों को लागू करना

घ) मुख्य कार्यपालक को वैधानिक अदालतों द्वारा दण्डित व्यक्तियों को क्षमा करने, मुक्त करने फांसी रोकने का अधिकार होता है।

ङ) विविध मिश्रित कार्य जैसे देश की अधिक समृद्धि के लिए राष्ट्रीय योजनाएँ बनाना अपने कार्य क्षेत्र में विशिष्ट व्यक्तियों को या राज्य की प्रशासनिक सेवा करने वाले व्यक्तियों को सम्मान और डिग्रियाँ प्रदान करना।

न्यायपालिका

न्यायलिका सरकार का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंग है क्योंकि कानून द्वारा परिभाषित न्याय को नागरिकों के बीच और नागरिकों तथा सरकारी सदस्यों के बीच लागू करता है।

प्रायः न्यायपालिका का अर्थ उन सरकारी अधिकारियों से हैं जिनका कार्य प्रत्येक मामलों में विघमान कानूनों को लागू करना होता है।

इन अधिकारियों का दायित्व होता है कि किसी भी मामले में संबंधित तथ्यों की जाँच करें और निर्दोषों को विधान पालिका या सरकार की कार्य पालिका से रक्षा करें।

न्यायपालिका के मुख्य कार्य हैं (क) न्याय लागू करना ख) अधिकारों और स्वतंत्रताओं की रक्षा करना (ग) संविधान की रक्षा एवं व्याख्या करना (घ) संघीय स्वरूप की रक्षा करना (ङ) कार्यपालिका को सलाह देना आदि।

बोध प्रश्न II

टिप्पणी : क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।
ख) इस इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1) कार्यपालिका के कार्य क्या है?

.....

.....

.....

.....

.....

4.5 नागरिकता, अधिकार और कर्त्तव्य

नागरिकता

पारंपरिक राज्यों में जहाँ अधिकांश आबादी पर राजा या शासक का शासन चलता था उनको नियंत्रित करने में उन्होंने तुच्छ जागरूकता या रूचि दर्शाई। उनके पास कोई राजनीतिक अधिकार या प्रभाव नहीं था। साधारणतः केवल आधिपत्य वर्ग या अधिक प्रभावी समूह समग्र राजनीतिक समुदाय से संबंधित होने का अनुभव करने लगते हैं।

आधुनिक सभ्यताओं में इसके विपरीत राजनीतिक व्यवस्था की सीमा में रहने वाले अधिकतर व्यक्ति नागरिक होते हैं जिनके सामान्य अधिकार और कर्त्तव्य हैं तथा वे स्वयं को राष्ट्र का एक हिस्सा मानते हैं। जबकि कुछ लोग राज्य विहीन राजनीतिक शरणार्थी होते हैं। लेकिन आज लगभग प्रत्येक व्यक्ति किसी निश्चित राष्ट्रीय राजनीतिक व्यवस्था का सदस्य होता है। अर्थात किसी न किसी राज्य का नागरिक होता है।

अधिकार

अपने व्यक्तित्त्व के विकास और कुल मिला कर समाज के विकास के लिए प्रत्येक सामाजिक पुरूष एवं महिला का अधिकार संपन्न होना एक सामाजिक आवश्यकता है। अधिकारों के दो पक्ष हैं : वैयक्तिक एवं सामाजिक अधिकारों का सामाजिक रूप होता है जो केवल समाज में रहने वाले तथा समाज के समग्र हित में कार्य करने वाले लोगों को ही प्रदान किए जाते हैं।

ग्रीन के अनुसार अपने उद्देश्यों के लिए कार्य करने की शक्ति अधिकार है जो समाज के द्वारा प्रत्येक उस व्यक्ति को प्रदान किए जाते हैं जिसके बारे में लगता है कि यह समाज के कल्याण के लिए योगदान करेगा।

कर्त्तव्य

अधिकार के बिना कर्तव्य नहीं और कर्त्तव्य के बिना कोई अधिकार नहीं। कर्त्तव्य का अर्थ है किसी अधिकारी या प्राइवेट व्यक्ति को कानून के द्वारा कोई कार्य सौंपना। इस प्रकार कर्त्तव्य में यह पहले से ही मान लिया जाता है कि व्यक्ति नियमों/कानूनों को जानने में सक्षम है। बच्चों, मूर्खों तथा पशुओं से कानून जानने और उनके अनुसार कार्य करने की कल्पना नहीं की जा सकती। फिर भी हमने बच्चों, मूर्खों तथा यहाँ तक कि पशुओं को भी कुछ अधिकार प्रदान किए हैं।

4.6 लोकतंत्र, कुलीन वर्ग सिद्धांत तथा अधिकार

लोकतंत्र

डेमोक्रेशी (लोकतंत्र) शब्द दो यूनानी शब्दों, डेमोस (Demos) जिसका अर्थ ही लोग है तथा क्रेटिया (Kratia) जिसका अर्थ है सरकार से लिया गया है। लोकतंत्र का अर्थ व्यापक है इसमें राजनीतिक समानता के सिद्धांत के साथ सामाजिक और आर्थिक न्याय को जोड़ा गया है। इब्राहिम लिंकन ने कहा है "लोकतंत्र का अर्थ है लोगों की, लोगों के लिए, लोगों द्वारा बनाई गई सरकार" लोकतंत्र ही सरकार का एकमात्र रूप नहीं है। यह समाज का एक रूप या शर्त भी है तथा इसके साथ एक व्यवस्था भी है जिसमें संपत्ति का अधिकार व्यापक रूप से दिया गया है यहाँ तक की समान रूप से सबको प्रदान किया गया है।

कुलीन वर्ग सिद्धांत

कुलीन वर्ग सिद्धांत सर्वप्रथम दो इटली के समाजशास्त्री बिल फ्रेडो प्रेटो तथा जी. मोसका द्वारा विकसित किया गया है।

कुलीनवर्ग सिद्धांत का कथन है कि व्यक्तियों के व्यक्तिगत गुण शासक को शासित से अलग करते हैं। कुलीनवर्ग अपनी व्यक्तिगत विशेषताओं या गुणों की श्रेष्ठता के कारण अपनी स्थिति प्राप्त करते हैं। उदाहरण के लिए उनमें पर्याप्त संगठनात्मक योग्यता होती है और मोसका के अनुसार नेतृत्व की प्रवीणता प्राप्त कर सकते हैं। दूसरी तरफ वे उच्चतम घूर्तता और चतुराई अपना सकते हैं जिन्हें प्रेटो शक्ति की पूर्व आवश्यकताएँ मानते हैं।

बाद के समय में उनका कुलीन वर्ग सिद्धांत शक्ति संपन्नता के व्यक्तिगत गुणों पर कम बल देता है और समाज के संस्थागत ढाँचे पर अधिक बल देता है उनका तर्क है कि सामाजिक संस्थाओं के वंशानुगत संगठन तक अल्प संख्यक वर्ग को संपूर्ण अधिकार जमाने की अनुमति देता है।

कुलीन वर्ग सिद्धांत ने आदर्श राज्य के रूप में साम्यवाद के विचार को नकार दिया तथा तर्क दिया कि समानता वाला समाज एक भ्रम है। यह मार्क्सवाद को समाज का वास्तविक विश्लेषण की अपेक्षा एक विचारधारा मानता है। कुलीन वर्ग सिद्धांत तर्क देता है कि सभी समाज दो मुख्य समूहों में विभाजित होते हैं एक शासक अल्पसंख्यक तथा दूसरा शासित वर्ग और यह स्थिति अनिवार्य है। कुलीन वर्ग सिद्धांत के अनुसार यदि सर्वहारा क्रांति भी होती है इसका एकमात्र परिणाम शासक और शासित वर्ग में परस्पर परिवर्तन ही होगा।

आर्थिक संरचना चाहे पूँजीवादी हो या साम्यवादी कुलीन वर्ग के शासन की अनिवार्यता में परिवर्तन नहीं होगा। यह अपने सदस्यों के व्यक्तिगत गुणों के अतिरिक्त कुलीनवर्ग अपने आंतरिक संगठन से अधिकार प्राप्त करता है। यह असंगठित और खंडित जनता पर संगठित और शक्तिशाली अल्पसंख्यक वर्ग का निर्माण करता है। मोसका के शब्दों में अल्पसंख्यक बहुसंख्यक में प्रत्येक अकेले व्यक्ति के मुकाबले अप्रतिरोध्य है।

कुलीन वर्ग मुख्य निर्णय लेता है जिसका प्रभाव समाज पर पड़ता है। यहाँ तक कि तथा कथित लोकतांत्रिक समाजों में भी इन निर्णयों में आम लोगों की भावना की अपेक्षा प्रायः विशिष्टि वर्ग के चिंताएँ प्रकट होती है। कुलीनवर्ग सिद्धांतवादी बहुसंख्यक वर्ग को मुख्य दैनिक विषयों के प्रति उदासीन एवं असंबद्ध चित्रित करते हैं। अधिकांश जनता पर कुलीन वर्ग का नियंत्रण एवं प्रभाव होता है और वे कुलीन वर्ग के नियम को न्याय संगत ठहराने वाले प्रचार को निराशा में स्वीकार कर लेते हैं।

अधिकार

अधिकार का अर्थ है नियंत्रित करने की शक्ति या क्षमता

इसे किसी व्यक्ति या समूह की अपनी इच्छाएँ पूरी करने तथा अपने निर्णयों और विचारों को लागू करने की योग्यता के रूप में परिभाषित किया जाता है। इसमें दूसरों को उनकी इच्छा के विरूद्ध प्रभावित करने तथा उनके व्यवहार को नियंत्रित करने की योग्यता भी शामिल है। अधिकार अनेक आयामों वाली संकल्पना है जिसमें विभिन्न परिभाषाएँ शामिल हैं।

कुछ अधिकार के विभिन्न आधारों पर जोर देते हैं (जैसे धन, हैसियत, ज्ञान, विशिष्टता, शक्ति, अधिकार) कुछ लोग अधिकार के विभिन्न रूपों की बात करते हैं जैसे प्रभाव, शारीरिक शक्ति या नियंत्रण; और कुछ लोग अधिकारों का प्रयोग करने की दृष्टिकोण से इसकी चर्चा करते हैं जैसे व्यक्ति या सामुदायिक उद्देश्यों, राजनीतिक उद्देश्यों, आर्थिक उद्देश्यों आदि के लिए।

कुल मिलाकर अधिकार संकल्पना में शामिल हैं :

क) संबंध स्थिति जहाँ अधिकारी का प्रयोग एक या अनेक के द्वारा किया जाता है।

ख) इसका संबंध परिणाम से उत्पन्न होता है।

4.7 कल्याणकारी राज्य : स्वतंत्रता, समानता और न्याय

कल्याणकारी राज्य

कल्याणकारी राज्य का प्रयोग मूल रूप से दूसरे महायुद्ध के दौरान ब्रिटेन के लिए लागू किया गया था। युद्ध के बाद इसका व्यापक प्रयोग होने वाले सामाजिक और आर्थिक नीति संबंधी परिवर्तनों की सुविधाजनक तरीके से बताने के लिए प्रयोग होने लगा। इन परिवर्तनों को प्रायोजित करने वाले व्यक्तियों के अनुसार ये ब्रिटिश समाज का निर्माण करेंगे।

इस प्रकार कल्याणकारी राज्य द्वारा निम्नलिखित तीन मुख्य सेवाएँ प्रदान की गई :

1) सामाजिक सेवाएँ जैसे सामाजिक सुरक्षा, राष्ट्रीय स्वास्थ्य सेवाएँ, शिक्षा, आवास, रोज़गार सेवाएँ तथा वरिष्ट, अक्षम लोगों और वंचित बच्चों के लिए कल्याणकारी सेवाओं में आंतरिक दिशा तथा विस्तार प्रदान करना

2) सर्वोच्च उद्देश्य और नीति के रूप में संपूर्ण रोज़गार प्रदान करना

3) राष्ट्रीयकरण का कार्यक्रम

ये तीन तत्त्व थे जिनके साथ कल्याणकारी राज्य की संरचना की गई।

व्यापक लोकतंत्र के संदर्भ में कल्याणकारी राज्य को अपेक्षाकृत अधिक समानता और कल्याणकारी सेवाओं के प्रति सामाजिक अधिकारों की मान्यता तथा सामाजिक आर्थिक सुरक्षा की मांग के लिए मुख्य स्तंभ के रूप में देखा जा सकता है।

जैसा कि भारत में लोकतांत्रिक गणराज्य की प्रस्तुति उसके संविधान की प्रस्तावना में की गई है कि यहाँ न केवल राजनीतिक दृष्टिकोण से अपितु सामाजिक दृष्टिकोण से भी एक लोकतांत्रिक व्यवस्था है दूसरे शब्दों यह न केवल सरकार का लोकतांत्रिक स्वरूप बनाता है अपितु लोकतांत्रिक समाज भी है जिसमें न्याय, स्वतंत्रता, समानता और भातृभाव की आत्मा भी प्रदान करता है।

इस लोकतांत्रिक गणराज्य का अर्थ सभी लोगों की भलाई के लिए है जो कल्याणकारी राज्य की संकल्पना में समाया हुआ है जिससे राज्य के नीति निदेशक सिद्धांतों की प्रेरणा मिली है।

स्वतंत्रता

शस्त्र विहीन लोगों के हाथों में स्वतंत्रता का विचार सर्वाधिक शक्तिशाली शस्त्र है और इसने तानशाहों एवं साम्राज्यवादियों को परास्त किया है। लिबर्टी (स्वतंत्रता) शब्द लेटिन भाषा के शब्द लिबर से लिया गया है जिसका अर्थ होता है आजादी। कभी–कभी इसे नकारात्मक अर्थ के प्रतिरोध की अनुपस्थिति के रूप में भी प्रयोग किया जाता है। कभी–कभी इसे कुछ सामाजिक आर्थिक स्थितियों की उपलब्धता के रूप में भी देखा जाता है जिनमें लोग अपने व्यक्तित्त्व का विकास करते हैं सकारात्मक अर्थ।

समानता

समानता का अर्थ सब के साथ एक जैसा व्यवहार प्रदान करना नहीं है। इसका अर्थ है आनुपातिक समानता समान–लोगों में समानता और असमान लोगों में असमानता। समानता और असमानता के व्यवहार का आधार तर्क संगत और न्यायोचित होना चाहिए।

समानता के अर्थ को स्पष्ट करते हुए लास्की कहते हैं कि समानता का अर्थ है निम्नलिखित चीजें :–

1) समाज में विशेष अधिकारों की समाप्ति

2) सभी को पर्याप्त अवसरों की उपलब्धता ताकि प्रत्येक अपने आप अपना विकास कर सके

3) सामाजिक लाभ सबको प्राप्त हो और किसी को भी अग्र लिखिए कारण से वंचित न रखा जाए। जन्म या अभिभावक और आनुवांशिक कारणों के कारण असमान मानना न्यायसंगत नहीं है।

4) आर्थिक और सामाजिक शोषण समाप्त करना।

न्याय

विभिन्न सामाजिक व्यवस्थाओं में न्याय की विभिन्न संकल्पनाएँ हैं। न्याय की परिभाषा में मुख्य कठिनाई यह है कि यह स्वतंत्र संकल्पना नहीं है। न्याय का सामाजिक व्यवस्थाओं के मूल्यों की व्यवस्था और व्यवहार से निकट का संबंध है। प्रत्येक व्यवस्था कुछ नियमों और मूल्यों से नियंत्रित होती है और इससे फिर न्याय का निर्धारण होता है। समय और हालातों में परिवर्तनों से मूल्यों में परिवर्तन होता है जिससे न्याय की संकल्पना में भी परिवर्तन होता है।

भारतीय परिदृश्य

देश की आजादी से राष्ट्रीय लोकतांत्रिक प्रक्रिया में लोगों की सक्रिय भागीदारी ने अधिकतर राजनीतिक संरचनाओं या दलों की गतिशीलता के माध्यम से स्वतः ही भारत में सामाजिक परिवर्तन और आधुनिकता की बृहत संरचनाओं के मत स्वरूप की शुरूआत कर दी थी।

इसका प्रत्यक्ष सामाजिक–संरचनात्मक महत्व है क्योंकि उनकी मुख्य प्रतिबद्धता अधिकार स्रोत के लिए वैधानिक प्रवेश मार्ग बनाने की थी।

भारत में बृहत् राजनीतिक संरचना की एक विचित्र विशेषता राजनीति अधिकार के क्षेत्र में एक दल (कांग्रेस) के आधिपत्य की निरंतरता रही है जिसे केवल आंशिक रूप से 1967 के आम चुनावों में भंग किया गया था।

यह तथ्य आधुनिकीकरण की प्रक्रिया से संबंधित भारत में राजनीतिक संरचना के विश्लेषण के लिए एक ऐतिहासिक स्थिति प्रदान करता है।

आधुनिकीकरण के राजनीतिक ढाँचों की जड़ें अधिकारों के बदलते वैधानिक स्रोतों में तथा इसके विस्तार एवं केन्द्रीयता की प्रक्रिया का सामाजिक संरचना में होना अनिवार्य है।

पारंपरिक राजतंत्र वाले समाज में अधिकार स्रोत पारंपरिक रूप से स्थापित किए गए हैं और राजा के सांस्थिक पदों, प्रधानों, या ऐसे पादरी शासकों में स्थापित किए गए हैं जो प्राप्त गुणों के कारण इन पदों तक अपनी पहुँच बना पाए हैं।

इन राजनीतिक पदों को प्रदान करने के नियमों के आधार पर ये जाति के वंशानुगत सिद्धांत पर या समकक्ष हैसियत वाले समूहों में असमान रूप से वितरित किए जाते हैं। राजनीतिक पदों पर नियुक्त होने वालों का चरित्र अधिकारवादी होता है और उसी के अनुरूप राजनीतिक नियम निरंकुश होते हैं इस प्रकार कार्य का क्षेत्र जिसे वास्तव में राजनीति या जिसे राष्ट्र अथवा समुदाय के लिए नीति बनाने का कार्य कहा जा सकता है कुछ ही लोगों तक सीमित है, अब पारंपरिक रूप से समाप्त हो गया है। ऐसी व्यवस्था में अधिकार का आनुवांशिक रूप होता है सहमति से नहीं होता। यह अधिकार संरचना में पदधारियों के अन्य कार्यों से भिन्न नहीं है।

शिक्षा

हमारे देश में राज्य पर्याप्त संख्या में शैक्षिक संस्थाएँ उपलब्ध करता है। भारत ने अपने संविधान में अल्पसंख्यकों, अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों की शिक्षा के लिए स्थाई प्रावधान किए हैं। भारतीय संविधान के स्थाई प्रावधानों के अंतर्गत कोई भी सरकारी शैक्षिक संस्था या सरकारी सहायता प्राप्त शैक्षिक संस्था, किसी भी व्यक्ति को धर्म, जाति, भाषा या इनमें से किसी के भी आधार पर प्रवेश देने से मना नहीं कर सकती (अनुच्छेद 29 (2))

फिर सभी अल्पसंख्यकों को चाहे वे धर्म के आधार पर हों या भाषा के आधार पर, अपनी पंसद की शैक्षिक संस्थाएँ स्थापित करने और संचालित का मौलिक अधिकार है। (अनुच्छेद 30 (1)) और राज्य सहायता प्रदान करने में किसी भी शैक्षिक संस्था के साथ इस आधार पर पक्षपात नहीं करेगा कि वह धर्म या भाषा के आधार पर किसी अल्पसंख्यक प्रबंधन के अन्तर्गत आती है (अनुच्छेद 30(2))

अंत में, मुफ्त एवं अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने के लिए (अनुच्छेद 45) राज्य सार्वजनिक स्वास्थ्य सुधारने के लिए और जीवनस्तर में सुधार के लिए कार्य करेगा और चिकित्सीय उद्देश्यों को छोड़ कर शराब, और नशीली दवाओं के उपभोग पर प्रतिबंध लगाएगा। (अनुच्छेद 47)

सरकार द्वारा संचालित संस्थाओं के अलावा कुछ गैर सरकारी संस्थाएं की बिना भेदभाव के सेवा प्रदान करती हैं।

4.8 राष्ट्रवाद : धर्म, जाति और वर्ग

राष्ट्रवाद

राष्ट्र–राज्य राष्ट्रवाद की उन्नति से जुड़े होते हैं जिसे ऐसे प्रतीकों और विश्वासों के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो एक साधारण राजनीतिक समुदाय का एक हिस्सा होने का अहसास कराते हैं। इस प्रकार व्यक्ति भारतीय, ब्रिटिश, अमेरीकन या रूसी होने का गर्व महसूस करते हैं।

संभवतः लोग हमेशा किसी न किसी प्रकार के सामाजिक समूहों के साथ एक प्रकार की पहचान का अनुभव करते हैं। जैसे उनके परिवार, गाँव या धार्मिक समुदाय। फिर भी राष्ट्रवाद केवल आधुनिक राज्य के विकास के रूप में प्रकट होता है।

संस्कृति और धर्म

धर्मों की सुरक्षा के लिए भारतीय राज्य एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। भारतीय लोगों की एकता और भाई–चारे से धर्म निरपेक्ष राज्य होने के विचारों को अनेक बार प्रकट किया है इसका अर्थ है कि राज्य सभी धर्मों की समान रूप से रक्षा करता है और अपनी तरफ से राज धर्म नहीं थोपता।

यह स्व्यं में भारतीय लोकतंत्र की एक उल्लेखनीय उपलब्धि है जबकि हमारे पड़ोसी जैसे पाकिस्तान, बंगलादेश, श्रीलंका, व बर्मा ने राजधर्म के रूप में विशेष धर्मों को अपनाया हुआ है। भारत में एक तरफ तो राज्य अपना कोई धर्म स्थापित नहीं करेगा वहीं दूसरी तरफ किसी धर्म विशेष को विशेष संरक्षण प्रदान नहीं करेगा। राज्य किसी भी नागरिक को किसी विशेष धर्म या धार्मिक संस्थाओं की प्रगति या देखभाल करने के लिए किसी प्रकार का शुल्क देने के लिए विवश नहीं करेगा।

संपूर्ण सहायता प्राप्त किसी भी शैक्षिक संस्था में कोई धार्मिक शिक्षा प्रदान नहीं की जाएगी। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी श्रद्धा की स्वतंत्रता होगी तथा अपने धर्म को प्रकट करने, पालन करने तथा उसकी प्रगति करने की भी स्वतंत्रता होगी। जहाँ पर धार्मिक समुदाय अल्पसंख्यक ही है वहाँ संविधान इसकी संस्कृति और धार्मिक हितों को बनाए रखने में सहायता प्रदान करेगा।

भारतीय संविधान में अनुच्छेद 29 के अनुसार राज्य समुदाय की अपनी संस्कृति के अलावा अन्य किसी संस्कृति को नहीं थोपेगा।

ऐसे समुदाय को अपनी पसंद की शैक्षिक संस्थाएं स्थापित करने और उनके संचालन का अधिकार होगा और राज्य शैक्षिक संस्थाओं को अनुदान प्रदान करने के में अल्पसंख्य समुदाय द्वारा संचालित किसी शैक्षिक संस्था के विरूद्ध इस आधार पर भेदभाव नहीं करेगा कि यह धार्मिक समुदाय के प्रबंधन में आती है (अनुच्छेद 30)

जाति और राजनीति

जाति अपने पारंपरिक कार्यों और स्वरूपों को छोड़ती है शनैः शनैः नए स्वरूप और कार्य अपनाने लगती है। यह विशेष रूप से सार्वजनिक जीवन और राजनीति के क्षेत्र में और अधिक प्रभावशाली हो जाती है। यह भारतीय राजनीतिक मामलों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इन दो संस्थाओं में एक दूसरे से कैसे और क्यों निकटता हुई? इसके परिणामों के बारे संक्षिप्त चर्चा आगे की जा रही है।

इन दोनों के क्षेत्रों में एक दूसरे का प्रवेश करने का प्रथम और सबसे अधिक महत्वपूर्ण कारण है कि दोनों के मूल में सामाजिक जीवन है राजनीतिक संबंध अनिवार्यतः सामाजिक संबंध होते हैं। यह व्यवस्था सामाजिक और आर्थिक प्रभुत्व प्राप्त करने वाली है। देश की राजनीतिक एवं प्रशासनिक संरचना किसी काल विशेष में विद्यमान सामाजिक व्यवस्था और सामाजिक संबंधों को प्रकट करती है। ऐसे समाज में जहाँ पारस्परिक संबंध और संस्थागत प्रबंध मुख्यतः जाति आधारित होते हैं, राजनीति में मिश्रित जातियाँ हो सकती हैं।

रजनी कोठारी के अनुसार जो लोग भारतीय राजनीति में जातिवाद की शिकायत करते हैं, केवल तुच्छ राजनीति की बात करते हैं जिसका समाज में कोई आधार नहीं है। उनमें संभवतः या तो राजनीति की प्रकृति का अथवा जाति व्यवस्था की प्रकृति की स्पष्ट संकल्पना का अभाव है। राजनीतिक लोकतंत्र की प्रकृति ने जाति और राजनीति को परस्पर निकट ला दिया है। राजनीति एक स्पर्धात्मक व्यवसाय है। इसका उद्देश्य कुछ उद्देश्यों को पूरा करने के लिए अधिकार प्राप्त करना है। और इसकी एक प्रक्रिया स्थितियों को गतिशील और समेकित करने के लिए विद्यमान गठबंधनों को पहचानने और चालकी से प्रभावित करने वाली है। इस प्रकार किसी नेता या दल के द्वारा उठाए गए कुछ विषयों की तरफ जनता को संगठित करना और गतिशील करना राजनीति का केन्द्र बिन्दु होता है।

ये गतिशीलताएँ समूह के विचारों और निष्ठाओं के आधार पर की जाती हैं लेकिन मूलभूत प्रकृति और हितों में भिन्नता के कारण सभी को एक विषय पर एक दिशा में गतिशील नहीं किया जा सकता।

इस प्रकार सदियों से समाज को विभाजित करने वाला जातिवाद, समूह गतिशीलता की श्रेष्ठ तकनीक के रूप में कार्य करता है। राजनीतिक जातिवाद को संगठन के लिए सर्वश्रेष्ठ स्पष्ट एवं लचीला आधार पाते हैं। चूंकि अधिकार और हैसियत अब जाति के आधार पर प्रदान नहीं की जाती इसलिए निम्न जाति के लोगों को राजनीति में शामिल होने के लिए बढ़ावा दिया गया है जिससे दूसरे लोग राजनीति से बाहर हो जाएँ।

सभी श्रेणियों के लोगों ने प्रचार के लिए जाति को आधार बना कर अपने पक्ष में सार्वजनिक सहायता को गतिशील बनाने का प्रयास किया है क्योंकि भारतीय समाज में ऐसी गतिशीलता के लिए उन्हें पहले से ही तैयार आधार मिल जाता है। उत्तर प्रदेश, आंध्र प्रदेश तथा बिहार की राजनीति के गुटबंदी नेटवर्क में विभिन्न जाति समूहों के शीघ्र ही सत्ता प्राप्ति के अच्छे उदाहरण हैं जिन्होंने गतिशीलता का सर्वोत्तम माध्यम प्रदान किया है।

वर्ग और समाज

वर्ग वे सामाजिक समूह हैं जो किसी समाज में उच्च विशेष स्थितियाँ और निम्न विशेष स्थितियां प्राप्त कर लेते हैं। सामाजिक वर्ग श्रम विभाजन के फलस्वरूप उत्पन्न होते हैं। ये समान सामाजिक हैसियत वाले लोगों से बनते हैं जो एक–दूसरे को सामाजिक समानता के रूप में समझते हैं। प्रत्येक वर्ग की एक उपसंस्कृति होती है जिसमें प्रवृतियाँ, विश्वास, मूल्य और व्यवहार के नियम दूसरे वर्गों से भिन्न होते हैं।

सामाजिक वर्ग समुदाय में कुल सामाजिक और आर्थिक स्थिति के आधार पर होते हैं जिसमें धन, आमदनी, व्यवसाय, शिक्षा, आत्म–पहचान, वंशानुगत हैसियत, समूह की भागीदारी तथा दूसरों द्वारा प्रदान मान्यता शामिल होती हैं।

यद्यपि वर्ग रेखाएँ स्पष्ट रूप से नहीं खींची जाती तो भी सामाजिक हैसियत की निरंतरता ऐसे बिन्दुओं को प्रकट कर देती हैं।

किसी वर्ग के सदस्यों का सही आकलन करना कठिन है। वर्ग की उपसंस्कृति बच्चों को अपने अभिभावकों की हैसियत बनाए रखने के लिए तैयार करती है। वर्ग के बारे में मार्क्स और वेबर के विचारों की चर्चा तथा समाज शास्त्र में वर्ग विश्लेषण की आधुनिक विचारधाराओं की समीक्षा आगे की जा रही है।

कार्ल मार्क्स

मार्क्स के लिए वर्ग के अनेक प्रकार के प्रयोजन हैं लेकिन मार्क्स के सामाजिक वर्ग के सामान्य स्वरूप के आवश्यक पक्ष स्पष्ट हैं :

क) प्रत्येक समाज को आश्रित बच्चों, रोगियों और वृद्धों को लिए अतिरिक्त, भोजन, आवास एवं वस्त्रों का उत्पादन करना होता है। जब एक वर्ग जीवित रहने के लिए तुरंत उपभोग न किए जाने वाले संसाधनों पर निजी संपत्ति के रूप में दावा करने लगता है तो वर्ग भेद आरंभ हो जाते हैं।

ख) इसलिए वर्गों को उत्पादक संपत्ति के स्वामित्व (या जिनका स्वामित्व नहीं है) के संदर्भ में परिभाषित किया जाता है जो अतिरिक्त उत्पादन को प्राप्त करना संभव बनाते हैं। मानव इतिहास के विभिन्न कालों में संपत्ति के विभिन्न रूपों (दास, जल, भूमि, पूँजी) ने सामाजिक संबंधों को महत्वपूर्ण स्वरूप प्रदान किया है। लेकिन सभी वर्ग व्यवस्थाओं में दो मुख्य वर्ग होते हैं। मार्क्स के अनुसार पूँजीवाद में बूर्जुआ और मध्य वर्ग में दो महत्वपूर्ण वर्ग संबंध पाए जाते हैं।

मैक्स वेबर

वर्ग के बारे में वेबर की विश्लेषणात्मक विचारधारा को वर्ग का श्रेष्ठ व सर्वाधिक प्रभावशाली विकल्प माना जाता है। मार्क्स से भिन्न वेबर अन्य तथ्यों पर जोर देता है जो असमानता को बढ़ावा देते हैं। वह विशेष कर हैसियत या सम्मान और शान को भेद कारक परिवर्तन मानता है।

उसने वर्ग हैसियत तथा अधिकार तथा अधिकार के बीच संबंध पर जोर दिया गया है। उसका तर्क है कि वर्ग एक ऐसी श्रेणी या लोगों का समूह है जिनके जीवन अवसरों की स्थिति एक जैसी होती है जो वर्ग स्थिति का निर्धारण करने का एक महत्वपूर्ण तथ्य है। मार्क्स ने स्वामित्व और अस्वामित्व को मूल मापदंड माना है जबकि वेबर ने गैर आर्थिक तथ्यों को महत्व दिया है। वेबर मार्क्स से आधुनिक सभ्यताओं में नौकरशाही को शक्ति के बुद्धिमान एवं प्राप्त व्यवस्था के रूप में देखने में भी भेद करते हैं। वेबर के अवसरों और

प्रभावित करने वाले विभिन्न तथ्यों पर जोर देने से उसकी वर्ग और सामाजिक स्तरीकरण के विश्लेषण की विचार धारा को समाजशास्त्र के सिद्धांत में प्रभावशाली बना दिया है।

बोध प्रश्न III

टिप्पणी : क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) इस इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1) संक्षिप्त रूप से वर्णन करे कि वेबर मार्क्स से कैसे भिन्न हैं?

.....

.....

.....

.....

4.9 नागरिक समाज, सामुदायिक संगठन, सामाजिक सम्पत्ति

नागरिक समाज

मौटे तौर पर नागरिक समाज उसे कहा जा सकता है जिसमें राज्य के हस्तक्षेप के बिना सभी प्रकार की सार्वजनिक एक राजनीतिक गतिविधियाँ होती हैं। इसमें सभी स्वतंत्र, स्वयं सेवी एवं निजी क्षेत्रों की वे गतिविधियाँ शामिल हैं जिनमें व्यक्ति, परिवार, मीडिया, व्यवसाय और नागरिक संस्थाएँ एवं संगठन आदि शामिल होते हैं। नागरिक सामाजिक संगठनों का दायित्व राजनीतिक स्वतंत्रता में वृद्धि करना, मौलिक अधिकारों की रक्षा करना, नागरिक संस्थाओं को व्यापक बनाना, तथा सरकार की अपेक्षा कम लागत से सामाजिक विकास को बढ़ावा देना है। ये दायित्व गैर सरकारी संगठनों, सामाजिक आंदोलनों, सांमुदायिक लोगों के संगठनों, धार्मिक समूहों, कृषक एसोसिएशनों, उपभोक्ताओं और व्यापार यूनियनों की गतिविधियों में देखे जाते हैं। सिविल समाजों की शासन की औपचारिक संरचनाओं से बहिष्कृत लोगों जैसे महिलाएँ, निर्धन व अल्पसंख्यक (यहूदी, धार्मिक प्रजातीय) के लिए विशेष भूमिका होती है। नागरिक सामाजिक संस्थाएँ प्रायः विकल्पों का सम्मान करती है।

नागरिक समाज जितना अधिक मजबूत या अधिक सघन व ऊंचे स्वर में अपना पक्ष रखने वाला होगा लोकतांत्रिक कार्य उतने ही अच्छे होंगे। नागरिक समाज लोकतंत्र की पूर्व शर्त है।

सामुदायिक संगठन

अच्छे नागरिक प्रशासन के लिए समुदाय आधारित लोगों के संगठन भी महत्वपूर्ण योगदान करते हैं। इन संगठनों को लोकतांत्रिक संगठन कहा जाता है जो अपने सदस्यों का प्रतिनिधित्व करते हैं और उनके प्रति जिम्मेदार होते हैं। सामुदायिक विषयों को उठाने के लिए समुदाय आधारित संगठनों को सामूहिक रूप से संगठित करने की प्रक्रिया का लम्बा इतिहास है। स्वयं लोग ये संगठन बनाते हैं और इसका कार्यक्रम तैयार करते हैं। गैर सरकारी संगठन सिविल समाज में अधिक ध्यान आकर्षित करते है क्योंकि वे सामाजिक सेवाओं की आपूर्ति, सिफारिश और शक्ति सम्पन्नता के वाहक होते हैं।

सामाजिक सम्पत्ति

सामाजिक सम्पत्ति सामान्यतः लोकतंत्रवाद को तथा विशेषतः लोकतांत्रिक कार्य निष्पादन को बढ़ावा देती है। सामाजिक सम्पत्ति सामान्य उद्देश्य के लिए समूहों और संगठनों में

इकट्ठे होकर कार्य करने की लोगों की योग्यता है। सामाजिक सम्पत्ति को सामान्य रूप से समूह के उन सदस्यों के पारस्परिक कुछ अनौपचारिक मूल्यों या नियमों की विद्यमानता के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो परस्पर सहयोग करना चाहते हैं। सामाजिक सम्पत्ति में सामाजिक संगठन जैसे संजाल, नियम और सामाजिक विश्वास की विशेषताएं शामिल हैं जो पारस्परिक लाभ के लिए सहयोग और समन्वय प्रदान करती हैं।

सम्पत्ति के अन्य रूपों की तरह सामाजिक सम्पत्ति भी उत्पादक तथा कुछ उद्देश्यों को उपलब्ध कराने वाली होती है जिसके अभाव में उन्हें प्राप्त करना असंभव है। यदि कोई लोकतांत्रिक प्रशासन को बढ़ावा देना चाहता है तो उसे सहकारी सामुदायिक विकास योजनाओं की तरह संजाल को समर्थन देना चाहिए।

4.10 स्थानीय प्रशासन और लोकमत

स्थानीय स्व–प्रशासन–पंचायती राज

भारत में गाँवों में स्व–प्रशासन व्यवस्था है पंचायती राज। भारत में पंचायती राज व्यवस्था बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि यहाँ लगभग 80 प्रतिशत आबादी गाँवों में रहती है। भारत में पंचायती राज का प्रादुर्भाव 1957 में स्थापित बलवंत राय मेहता समिति की सिफारिशों के आधार पर हुआ। यह समिति 1952 तथा 1953 में आरंभ किए गए क्रमशः सामुदायिक विकास कार्यक्रम तथा राष्ट्रीय विस्तार सेवा के अध्ययन के लिए गठित की गई थी।

1992 में संविधान में 73 वां संविधान संशोधन किया गया जिससे पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक स्वरूप प्राप्त हुआ। इससे प्रत्येक राज्य (प्रांत) के लिए तीन स्तरीय व्यवस्था का ग्राम स्तर (ख) मध्यवर्ती स्तर तथा (ग) जिला स्तर पर व्यवस्था करना अनिवार्य भी होगा।

लोकमत

लोकमत को लोकतंत्र का आधार कहा जाता है। यह सरकार और जनता के बीच की कड़ी है। लोकमत का प्रयोग प्रायः उन मामलों से संबंधित लोगो के समग्र विचारों को अभिव्यक्त करने के लिए किया जाता है जो उनके, समुदाय के तथा समाज के हितों को प्रभावित करते हैं। राजनीतिक व्यक्तियों, संस्थाओं तथा विचार धाराओं के बारे में लोगों की संकल्पना नीति बनाने में कार्य करती है। लोकतंत्र में सरकारों को चलना तथा गिरना लोकमत पर आधारित होता है।

लोकमत को मीडिया, राजनीतिक दलों, दबाव समूहों, चुनावों, विधान मंडल में बहसों, शैक्षिक संस्थाओं तथा सार्वजनिक बैठकों जैसे साधनों के द्वारा बनाया जाता है। प्रेस, रेडियो, दूरदर्शन और सिनेमा ऐसे कई साधन हैं जो लोगों तक राजनीतिक सामाजिक और धार्मिक विचार पहुंचाते हैं। यही कारण है कि लोकतंत्र में प्रेस की स्वतंत्रता पर पर्याप्त बल दिया जाता है।

4.11 सारांश

स्वतंत्रता के पश्चात भारत में राजनीतिक प्रवृतियाँ पर्याप्त रूप से समन्वयवादी रही हैं जैसे (क) क्षेत्रीय हित समूहों द्वारा स्पष्ट मांग करना, (ख) भाषा के आधार पर राजनीतिक क्षेत्र में राज्यों का गठन, (ग) आर्थिक नीतियों के क्षेत्र में सामजंस्यवादी अर्थव्यवस्था पर जोर देना, (घ) धर्म और संस्कृति में धर्म निरपेक्षता की विचार धारा, और (ङ) अंतर्राष्ट्रीय

संबंधों आदि में तटस्थता। ये सभी भारत में राजनीतिक आधुनिकीकरण के प्रमुख सामंजस्यवादी प्रतिबिम्ब हैं।

राजनीति, जाति संघ संबंधी समूहों तथा यहूदी एकता संगठनों की पारंपरिक संस्थाओं में समायोजन में भी सामंजस्यवादी तथ्य प्रकट होते हैं। उन्होंने पर्याप्त सफलतापूर्वक और बहुत कम विकृति के साथ आधुनिक राजनीतिक संस्कृति की जरूरतों के अनुसार काफी हद तक ढाल लिया है।

हालांकि इस प्रक्रिया में कुछ गलत समायोजन होना स्वाभाविक है। अब तक भारतीय राजनीति की सामंजस्यवादी गतिशीलता भारतीय संस्थाओं के स्वभाविक लचीलेपन के कारण अपने सद्मे को झेलने और भारत की पारंपरिक संस्कृति में सहन शीलता की प्रवृत्ति बनाने में सफल रही है। हम आशा कर सकते हैं कि भविष्य में राजनीतिक संरचना को चुनौती देने वाले राजनीतिक विरोधी आंदोलनों में सामंजस्यवादी गतिशीलता बार–बार विजयी रहेगी। यह भारत में राजनीतिक आधुनिकीकरण में अपना स्थान बना सकती हैं धीमे ही सही लेकिन सामाजिक रूपांतरण की लागत निश्चित रूप से कम होगी।

4.12 शब्दावली

नागरिक समाज : इसमें औपचारिक और अनौपचारिक दोनों प्रकार के समूह, संगठन और संस्थाएँ शामिल हैं और समाज में विविध हितों को बढ़ावा देने के लिए बाज़ार तथा राज्य से भिन्न स्वतंत्र रूप से कार्य करते हैं।

सामाजिक सम्पत्ति : वह सम्पत्ति जो संबंधों, विश्वास, पारस्परिकता और नियमों के नेटवर्क से प्राप्त की जाती है जो सामूहिक और समन्वित कार्य को संभव बनाती है। इससे समुदाय की कार्य दक्षता में वृद्धि होती है तथा भागीदारों एवं कुल मिलाकर समाज को लाभ होता है।

4.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें

मिश्रा, के.के. पॉलिटिकल थ्योरी (1988), नई दिल्ली, एव चांद एंड कं.।

नारंग, ए.एस. इंडियन गवर्नमें एंड पॉलिटिक्स (1996), नई दिल्ली, गीतांजली पॉब्लिशिंग हाऊस।

तायल, बी.बी, पोलिटिकल थ्योरी एंड इंडियन डेमोक्रेसी (1990), नई दिल्ली, आर्य बुक डिपो।

आरोड़ा, प्रेस, पोलिटिकल सांइस, कंप्रैटिव पोलिटिक्स (1981), नई दिल्ली, कॉसमॉस बुक हाइव प्रा. लि.।

जैन, एम.पी, पोलिटिकल थ्योरी (1989), नई दिल्ली, आथर्स गिल्ड पब्लिकेशंस।

4.14 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न I

1) किसी एक स्वतंत्र सरकार के अन्तर्गत एक निश्चित भू भाग में राजनीतिक रूप से संगठित किसी समाज को राज्य कहा जा सकता है। राज्य के मुख्य तत्त्व है जनसंख्या, प्रदेश, सरकार, प्रभुसत्ता तथा अंतर्राष्ट्रीय मान्यता।

बोध प्रश्न II

1) कार्यपालिका के मुख्य कार्य निम्नलिखित है।

   क) कानून और व्यवस्था बनाए रखना

   ख) देश की रक्षा करना और कूटनीतिज्ञ संबंध बनाना

   ग) कानूनों को लागू करने में भी कार्यपालिका की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

   घ) प्रमुख कार्यपालिका को न्यायालयों द्वारा दण्डित व्यक्तियों को क्षमा करने, मुक्त करने, फांसी रोकने आदि का अधिकार होता है।

   ङ) विविध प्रकार के कार्य जैसे देश की अधिक समृद्धि के लिए राष्ट्रीय योजनाएं बनाना, राज्य के लिए अपने क्षेत्र में विशिष्ट कार्य करने वालों या प्रशंसनीय कार्य करने वालों को सम्मान और पदक प्रदान करना।

बोध प्रश्न III

1) मार्क्स से भिन्न वेबर असमानता बढ़ाने वाले अन्य तथ्यों पर अधिक जोर देता है। हैसियत और शान को विशेषतः वह महत्वपूर्ण अंतर मानता है। वेबर मार्क्स की तुलना में वर्गों के अंदर में विभाजन और वर्ग सीमाओं में अनुभव जन्य परिवर्तनों पर अधिक जोर देता है। वेबर मार्क्स से नौकरशाही के प्रति दृष्टिकोण तथा साथ ही आधुनिक समाजों में अधिकार के मूलभूत संबंधों के प्रति दृष्टिकोण में भी भिन्न है।